हिन्दी
शीराज़ा
जे. एण्ड के. अकेडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

अगस्त–सितम्बर 2007

प्रमुख संपादक

डॉ. रफ़ीक़ मसूदी

संपादक

नीरू शर्मा
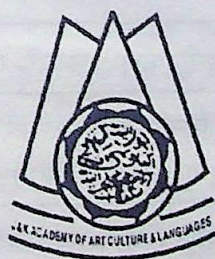
जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 August-September 2007
(Hindi)

पूर्णांक : 183 वर्ष : 43 अंक : 3

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004 दूरभाष : (0181)-2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

मानव का स्वभाव गतिशील है। लेकिन सांस्कृतिक मूल्य ही नैतिक आदर्शों की सहायता से उसके व्यक्तित्व में स्थिरता लाते हैं। क्योंकि जीवन का विकास सांस्कृतिक मूल्यों की समृद्धि से ही होता है। गतिशीलता सांस्कृतिक मूल्यों की एक ऐसी विशेषता है जिसमें प्राचीन मूल्यों का नये मूल्यों से संबंध स्थापित होता है। मनुष्य अपनी संस्कृति को परिवर्तित करता रहता है। इसीलिए प्रत्येक पीढ़ी की संस्कृति में भी बदलाव आ रहा है। नए सांस्कृतिक मूल्य पुराने मूल्यों में घुलमिल गए हैं और निरंतर प्रवाहित होते हुए रक्त के समान शरीर रूपी समाज में संचरित हो रहे हैं।

आज भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर है और हम पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर समाज में सुंदर और समृद्ध जीवन जीने के महत्त्वाकांक्षी हो गए हैं। आज के युवा अपने को पूर्ण रूप से 'डिस्को संस्कृति' की ओर ढकेल रहे हैं। इस संस्कृति का प्रवेश जीवन के प्रत्येक कोण में दृष्टिगत भी हो रहा है। आज हम इस बदलते परिवेश में कुछ नया सृजन करना चाहते हैं। पर अपनी सोच को व्यावहारिक नहीं कर पाते। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी कथनी और करनी में अंतर होता है। अत: हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारतवासी इस आधुनिक सभ्यता के उन्माद से बचकर अपनी अमूल्य संस्कृति के आदर्शों एवं मूल्यों को समझकर उन्हें अपने जीवन में ढाल कर यदि उन्हें व्यावहारिक रूप दे तो वह समृद्धिशील जीवन जी सकता है जिसका प्रभाव उसकी रचना प्रक्रिया पर भी पड़ता है।

रचनाकार त्रिकालदर्शी होता है। अपनी रचना के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक आदि परिस्थितियों को सामने रख कर जो भी सम्प्रेषित कर जाता है, वह भविष्य में उतना ही सार्थक और ग्रहणीय होता है जितना उसके युग में।

कुछ ऐसी ही रचनाओं से ओत-प्रोत शीराज़ा पाठकों को इस आशा से सौंप रहे हैं कि आप इसे सहेजने के साथ-साथ इस पर भरपूर चर्चा भी करेंगे। आपके सुझावों और साहित्यिक सहयोग की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

नीरू शर्मा

इस अंक में

❖ आलेख

❖ भाषांतर (डोगरी कहानी)

❖ नवांकुर

❖ कविता

❖ कहानी

❖ समीक्षा

6 मार्च 2007 को हुई सेंट्रल कमेटी की बैठक में अकैडमी प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करते हुए मुख्यमंत्री जनाब गुलाम नबी आज़ाद (अध्यक्ष जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी) एवं डॉ. रफ़ीक़ मसूदी सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी

सेंट्रल कमेटी की बैठक में मुख्यमंत्री जनाब गुलाम नबी आज़ाद (अध्यक्ष जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी), डॉ. रफ़ीक़ मसूदी, आई.बी.एस सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी कमेटी सदस्यों के साथ अकैडमी प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करते हुए।

सतरोत्तर हिन्दी कहानियों में जीवन मूल्य

डॉ. हरेराम पाठक *

कहानी साहित्य की अत्यंत लोकप्रिय विधा रही है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक की लिखी हिन्दी कहानियों का सामाजिक अध्ययन किया जाये तो उनमें समाज की बदलती हुई मान्यताओं का व्यापक दस्तावेज़ प्राप्त होगा। केवल सामाजिक ही नहीं ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन, परिवर्द्धन की दृष्टि से भी इस प्रकार के अध्ययन की महती आवश्यकता है। आजकल समाज की अनेक मान्यताएँ तेजी से बदल रही हैं, कुछ बदली जा रही हैं। ऐसी स्थिति में यह सभव नहीं है कि कहानियों का विकासात्मक अध्ययन करने के लिए हम प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युगीन एवं प्रेमचंदोत्तर श्रेणियों में विभाजित कर उससे छुट्टी पा लें। अतः छोटे-छोटे काल-खण्डों में हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं को बांटकर तदनुसार अध्ययन करना ही युग-सापेक्ष कहला सकता है। यद्यपि सतरोत्तर कहानियों में जीवन मूल्यों की यदि हम तलाश करें तब भी आज से लगभग 35 वर्षों के कहानी साहित्य का विकासात्मक परिचय देना होगा, परन्तु इस आलेख में मेरा प्रयास यह रहेगा कि पैंतीस वर्षों की लम्बी अवधि को दस-दस वर्षों के कालखंडों में विभाजित कर के देखा जाये, जिससे विभिन्न दशकों के बीच परिर्वनशील जीवन-मूल्यों का समग्र विवेचन संभव हो सके।

यदि 'जीवन-मूल्य' शब्द को परिभाषित किया जाये तो मेरी दृष्टि में सबसे सरल परिभाषा यह होगी कि जो चीज़ें, मान्यताएं अथवा स्थापनाएं हमारे जीवन को अवमूल्यित होने से बचाती हैं और वही हमारे लिए जीवन-मूल्य हैं। दूसरे शब्दों में, जीवन में उदात्तता लाने वाले तथा जीवन को मूल्यवान बनाने वाले तत्व ही जीवन-मूल्य कहलाते हैं।

सतरोत्तर कहानियों में 'नारी-मुक्ति' एवं दलित-मुक्ति जैसे विचारोत्तेजक आंदोलन प्रमुखता से अभिव्यंजित हुए हैं। इनके आंदोलनकारी साहित्यकारों के अनुसार परंपरागत जीवन मूल्य नारियों एवं दलितों को एक अनावश्यक क़ैदखाने में जकड़कर रख देते हैं। अतः उनकी खोयी हुई अस्मिता की स्थापना उनके बनाए हुए जीवन मूल्यों के अनुसार होगी। परिणाम स्वरूप, सत्तर के दशक का नारी-मुक्ति आंदोलन कहानियों, कविताओं आदि के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगा।

नारी-मुक्ति के नाम पर उन्मुक्त यौन-संबंध की वकालत की जाने लगी। आश्चर्य की बात यह है कि जिन लेखिकाओं एवं लेखकों ने उन्मुक्त यौन-संबंधों की वकालत की वे खुद मर्यादित वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, परन्तु कुछ उन्मुक्त यौन-संबंधों की कला को

---

* *हिन्दी विभागाध्यक्ष, डिगबोई महिला महाविद्यालय पो. डिगबोई-786171 जि. तिनुसकिया (असम)*

अपने जीवन में उतारकर नारकीय दाम्पत्य जीवन की अभिशप्त व्यथा भी झेल रहे हैं। यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि पुरुष लेखकों में उन्मुक्त यौन संबंधों को प्रश्रय देने वाले हैं प्रसिद्ध कहानीकार राजेन्द्र यादव एवं कमलेश्वर।

सन् 1972 में लिखित उषा प्रियंवदा की कहानी 'कितना बड़ा झूठ' उन्मुक्त यौन-संबंधों की पक्षधर है। इस कहानी में विश्वेश्वर और किरण पति-पत्नी हैं। उनकी दो बेटियाँ भी हैं। लेकिन किरण मैक्स बास बेल के साथ यौन-संबंध स्थापित कर लेती है। किरण शराब भी पीती है तथा बड़ी चतुराई से अपने और मैक्स के संबंधों को अपने पति से छिपाए रखती है। आश्चर्य की बात है कि किरण के इस व्यवहार में आलोचकों ने आधुनिक नारी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को खोज निकाला है।

सन् 1975 में लिखी निरूपमा सेवती की कहानी 'तुम एक गुलमोहर हो' में अवैध संबंधों की चर्चा की गई है। पेशे से डॉक्टर सोमेश अपनी पत्नी के व्यवहार से संतुष्ट न होने के कारण तरला नामक एक युवती से अवैध संबंध बना लेता है। माना कि समाज में इस प्रकार की घटनाएँ घटती हैं परन्तु ऐसे संबंधों पर कहानीकार का अपना क्या विचार है, यह पात्रों के मुख से कम-से-कम प्रकट अवश्य होना चाहिए।

डॉ. श्याम सुंदर की कहानी 'गुड़िया' में पति-पत्नी संबंधो के अंतर्गत परंपरागत दृष्टि का विरोध करते हुए नवीन मूल्यों की स्थापना की गई है। मालती अपने अपाहिज पति को बोझ समझने लगती है और ऑफिस के एक क्लर्क के साथ अवैध संबंध स्थापित कर लेती है। यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि पति-पत्नी में से कोई भी यदि शादी के कुछ वर्षों बाद अपाहिज हो जाता है तो दूसरे का कर्त्तव्य क्या यही होता है कि वह अपने पति/पत्नी आदि का त्याग करके दूसरी हाँड़ी में मुंह मारने चला जाये ? क्या इससे परस्पर सौहार्द्र एवं विश्वास की भावना कायम रह सकती है ? दूसरा प्रश्न, क्या अपनी नैतिक जिम्मेदारियों से अलग होकर कोई स्त्री अपने को नारी-मुक्ति आंदोलन से जोड़ सकती है? यदि ऐसी बात नहीं है तो कहानियों में ऐसी समस्याओं को उठाकर ऐसी नारियों की मानसिकता का समर्थन करना कहां तक उचित है।

सतीश जायसवाल की कहानी 'प्रतिस्थापना' (1978) में भी पति-पत्नी के टूटते संबंधों को चित्रित किया गया है। प्रोफेसर विश्ववंधु की पत्नी मिसेज बी.एम.पी. है. वह अपने पति के साथ झूठा प्रेम दिखाती है किन्तु मधूसूदन लाल सेठ के साथ प्रेम क्रीड़ा किया करती है, साथ ही समाज सुधारक होने का ढोंग भी करती है। वह वेश्याओं को उपदेश देती है- ''आप लोगों को यह पेशा बंद कर देना चाहिए।'' यह सुनकर एक वेश्या कहती है-''सच पूछें तो अब पेशा रहा कहाँ ? पेशा तो तब था जब आप लोग परदे में रहतीं थीं, और हम बाहर बैठतीं थीं, लोग हमारे पास आते थे, अब जब से आप लोग परदे के बाहर आयीं हैं, लोग जैसे दूर का रास्ता भूल गये हैं। अब पेशा कहाँ ? बुरा न मानना बहन जी बात का।''

यह कहानी निश्चय ही समाज के कटु सत्य का पर्दाफाश करती है एवं नारी के छद्म रूप-जो अनावश्यक पाश्चात्य एवं आधुनिक नारी के मोहपाश में आबद्ध है, की बखूबी पड़ताल करती है।

मालती जोशी की कहानी 'टूटने से जुड़ने तक' (1979) एक ऐसे व्यक्ति की मनोवृति का चित्रण करती है, जो झूठी प्रतिष्ठा के मोह में पड़कर अपनी पत्नी और बेटों की सारी ममता खो चुका है।

यद्यपि सचेतन कहानी की अवधारणा महीप सिंह की अपनी आवधारणा है जिसकी शुरुआत सन् 1960 ई. के बाद से हुई है, किंतु अभी भी उनकी कहानियों में सचेतनता वर्तमान है। उनकी कहानी ''दिल्ली कहाँ है'' (1985) में मानवीय संबंधों की पड़ताल की गई है। आज भी पाकिस्तान का सामान्य जन हिंदोस्तान की उस ज़मीन को स्पर्श करने के लिए लालायित दिखता है जहाँ कभी उनके संबंधों का एक हरा-भरा बाग लहराता था। संबंधों एवं रिश्तों के दर्द को अत्यंत संजीदगी के साथ इस कहानी में अभिव्यक्त किया गया है। जीवन-मूल्य यहाँ मर्यादा के साथ सच्चाई से अभिव्यक्त हुए हैं।

मृदुला गर्ग का कहानी संग्रह ''उर्फ सैम'' (1986) में आपसी संबंधों और सामाजिक संबंधों से सरोकार रखने वाली कहानियां हैं। इस संग्रह में विदेशों में रहने वाले भारतीयों की मानसिकता का बड़ा सुंदर चित्रण हुआ है। ''उर्फ सैम'' में यह दिखाया गया है कि हम भारतीय जिस संयुक्त परिवार को मिटाने पर तुले हुए हैं, विदेशी उसे ही आदर्श मानकर उसका अनुसरण करने लगे हैं।

मृणाल पाण्डेय की कहानी 'एक थी हंसमुख दे' (1985) में महानगरीय नारी मन की निस्संगता को दर्शाया गया है। इसमें नारी स्वतंत्रता की मांग उठाई गयी है। इसी प्रकार 'एक स्त्री का विदा गीत' में मृणाल पाण्डेय ने अल्मोड़ा के जन-जीवन का चित्रण किया है। मां अपने शिक्षित परिवार के साथ पहाड़ी गाँव छोड़ कर शहर तो आ जाती है। किंतु उसे वहाँ के रहन-सहन और बात-व्यवहार में अत्मीयता भरा प्रेम नहीं मिलता। उसे शहरी लोगों की हर बात में अर्थ का दंभ और संबंधों का बनावटीपन दिखाई देता है। मानव की नैतिकता छद्म रूप धारण कर प्रकट हो रही है। दिखावटी आत्मीयता नैतिकता का पर्याय बनने लगी है। इस दशक के कहानीकारों में रानी सेठ, दीप्ति खंडेलवाल, चित्रा मुद्गल आदि बहुचर्चित नाम रहे हैं। 'अंधे मोड़ से आगे' व 'तीसरी हथेली' राजी सेठ के दो चर्चित कथा-संग्रह हैं जिसमें संकलित कहानियाँ नारी-जीवन की व्यथा-कथा कहती हैं।

साहित्य समाज का दर्पण है तो उसमें जीवन मूल्यों के विघटन एवं उत्थान की कहानी होगी ही। किंतु समाज का रचनात्मक ढाँचा तैयार करने में भी साहित्य की बहुत बड़ी भूमिका होती है। सतरोत्तर हिन्दी कहानियों में समाज का यथातथ्य चित्र भी हैं एवं समाज में रचनात्मक बदलाव लाने की कुलबुलाहट भी।

चित्रा मुद्गल का कहानी-संग्रह 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' (1994) में ऐसी कहानियाँ हैं, जिसमें समाज की सूक्ष्म एवं ज्वलंत समस्याओं पर गहराई से चिंतन किया गया है। शीर्षक कहानी में एक मामूली से लड़के मोट्या की कहानी है जो सीधा-सादा है और अपनी मालकिन के कहे पर सारा दिन काम करता रहता है, पर एक दिन जब उसके विश्वास को ठेस पहुँचती है तो वह इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि आस-पास के लोग, तब हक्के-बक्के और भयाक्रांत से उसे देखते रह जाते हैं। यहाँ भी उस बच्चे में जीवन-मूल्य की चिंगारी देखी जा सकती है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'त्रिशंकु' में मुंबई की झोंपड़पट्टी में रहने वाले एक बच्चे की कहानी है जो गरीबी की मार झेलते हुए एक दिन पुलिस के हाथ लग जाता है। कड़ी मार एवं तीन महीने की सजा के बाद जब वह जेल से छूट कर आता है तो पता चलता है कि उसकी माँ ने दूसरा विवाह कर लिया है। इसी प्रकार उनकी कहानी 'दरमियान' में दफ्तर में काम करने वाली एक स्त्री की मानसिक दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। मर्दों की घूरती आँखों से खुद को बचाते, सिमटते हुए, सुरक्षित घर लौटने की चिंता और तनाव में चलती स्त्री की मानसिक उलझनों का समसामयिक चित्र इस कहानी में देखा जा सकता है।

संजीव की कहानी 'प्रेरणास्त्रोत' (1995) में 'जंगली बहू' का चरित्र नीचाइयों से उठता हुआ दिखाया गया है। यहाँ अपने जीवन-मूल्य वह स्वयं गढ़ती है। कार्तिकेय सतरोत्तर कहानीकारों में अपनी अच्छी जगह बना चुके हैं। उनकी बहुचर्चित कहानी 'हीलियम' (1994) में उपभोक्तावाद के खतरों की बहुत बारीकी से पहचान की गई है। कमलाकांत द्विवेदी की कहानी 'मूसदानी' (1996) में जीवन सत्य को मूसदानी में कैद एवं अंत में उसी में दम तोड़ देने वाले एक चूहे की मौत दिखलाकर स्पष्ट किया गया है।

व्यक्ति के जीवन का मूल्य क्या है ? आज का मानव अपनी योग्यता के बल पर, अनुभव के आधार पर अपने जीवन मूल्यों को स्थापित करने में लगा हुआ है, पर घूसखोरी एवं तरफदारी के बढ़ते हुए सैलाब में ईमानदार व्यक्ति को कोर्ट भी न्याय नहीं दे पाता। सुदर्शन वशिष्ट की कहानी 'फाईल में पताका' (1997) इसी सच का उद्घाटन करती है। नौकरी करते हुए प्रोमोशन के मार्ग में आने वाली सारी बाधाओं को इस कहानी के माध्यम से बखूबी चित्रित किया गया है। इसी प्रकार नासिरा शर्मा की 'इमाम साहब' (1997), जयवंती की 'जाग्धार वाली' (1997) तथा सिद्धनाथ सागर की 'मोह' (1997) आदि कहानियां अलग-अलग तरीकों से जीवन-मूल्यों के प्रश्नों से ही जूझती हैं।

तेजिन्द्र शर्मा की कहानी 'डूबते सूरज की लालिमा, (1998) में डोलमा नामक एक पहाड़ी लड़की के बिन ब्याहे गर्भवती होने की करुण दास्तान है। कुंवारी अवस्था में ही डोलमा, अतुल वर्मा के बच्चे की मां बन जाती है। अतुल वर्मा ग्लानि से भरकर अपने जवान बेटे से सारी करतूत कह डालता है और बेटे के साथ वह डोलमा से मिलने जाता है। डोलमा के घर पहुंच कर उसे ज्ञात होता है कि उसकी शादी अन्यत्र हो चुकी है। उसके सुखमय

वैवाहिक जीवन के विषय में जानकर अतुल वर्मा को ऐसा महसूस होता है जैसे वर्षों से उसकी छाती पर जमी भारी शिला एकाएक हट गयी हो। सन् 1998 में लिखित अन्य कहानियों में जितेन ठाकुर की 'चर्च', अनिल चमड़िया की 'तस्लीम के नाम' आदि उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

अचला शर्मा की कहानी 'बेघर' (1999) वी.आई.पी. एवं आम आदमी की जिन्दगी के बीच बढ़ते फासले को दर्शाती है। वी.आई.पी. की गाड़ी जिस रास्ते से गुज़रती है, वह रास्ता घंटों पहले से जाम हो जाता है। भले ही अस्पताल जाने की जल्दबाजी में कोई रोगी गाड़ी में बैठे-बैठे ही दम तोड़ दे, पर वी. आई. पी. गाड़ी जब तक नहीं गुज़र जाती क्या मजाल की किसी आम आदमी की गाड़ी गुज़र जाये। बावजूद इसके पुलिस वाले ऐसे हैं कि बिना गाली दिये प्यार से कोई बात करते ही नहीं। सांत्वना की कहानी 'बच्चे', सुशील कुमार फुल्ल की कहानी 'निखट्टू फिर मुस्कुराने लगा था' (1999), हसन जमाल की 'क्या तुम मेरी बीवी से मुहब्बत कर सकते हो' (1999), हरदर्शन सहगल की 'फ़कत तुम्हारे लिए' (1999) आदि उत्कृष्ट एवं जीवन मूल्यों को विभिन्न कोणों को दर्शाती कहानियाँ हैं।

आज समाज की समस्याएं इतनी बृहत्तर हो गयीं हैं कि उन पर आधारित साहित्य लेखन को कोई निश्चित नाम नहीं दिया जा सकता। आज की कहानियों में कोई दृढ़बद्ध विचार-धारा काम नहीं कर रही है। इख़्लाक अहमद ज़ई की कहानी 'दरवाज़ा' (2000) में इदरीस नामक एक युवक की कथा है जो युवतियों के पहनावे-पोशक का स्वाभाविक रूप से ही शौकीन हो जाता है। माँ-बाप को उसका यह स्वभाव बहुत ही नागवार लगता है। मलिक राजकुमार की कहानी 'ठीकरा' (2000) में भारत-विभाजन के फलस्वरूप अपनी अभिशप्त ज़िंदगी जी रहे मुस्लिमों की व्यथा-कथा है। भारत (करनाल) से पाकिस्तान गये मुस्लिम अपने ही देश में अभिशप्त एवं दीनता की ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं।

ऐसा नहीं कहा जा सकता की बीसवीं सदी के अंतिम दशक की अथवा इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ की कहानियां किसी विशेष ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन की गहराई, मापती हुई लिखी जा रहीं हैं। आज की ऐसी अनेक कहानियां हैं जिन पर प्रेमचंद ही नहीं भारतेन्दु युगीन कहानियों एवं निबंधों -सा चुलबुलापन व्यंग्य एवं हास्य का लास्य है।

देवकिशन राज पुरोहित ही कहानी 'यम का फैसला' (2001) एक ऐसी रोमांचक एवं मनोरंजन से परिपूर्ण कहानी है जिसमें कहानी का नायक स्वपन में ही देखता है कि यम उसे लेने आ गया है। यमराज से वह तरह-तरह के प्रश्न करने लगता है। अंत में उसके प्रश्नों से तंग आकर यमराज को अपना फैसला बदलना पड़ता है और वे उसे पुनः मृत्यु लोक में भेज देते हैं। इस कहानी में कुतर्की व्यक्तियों पर भी अच्छा-खासा व्यंग्य है। हबीब कैफी की कहानी 'नजूमी' (2001), श्रवण कमुार की 'हदें' (2001) तथा संध्या गुप्ता की 'बंदनवार' (2001) कहानी अलग-अलग तरीकों से जीवन-मूल्यों से टकराती हैं।

सन् 2002 की कहानियों में धीरज अस्थाना की कहानी 'मेरी फर्नांडिस क्या तुम तक मेरी आवाज़ पहुँचती है,' उर्मिला शिरीष की 'किसका चेहरा', बद्री सिंह की 'मांस', राजेन्द्र लहरिया की 'बलि', अभय की 'बैलून', राजेन्द्र दानी की 'कहाँ आ गये हम', नासिरा शर्मा की 'कागज़ी बादाम', नीलम शंकर की 'जो रुकता नहीं', सुषमा मुनीन्द्र की 'रात्रि के अंतिम प्रहर का स्वप्न', रजनी गुप्त की 'तीसरी आँख' आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जो समाज की विभिन्न परतों को जीवन मूल्यों से जोड़कर ही नहीं देखती बल्कि मुर्दा होती ज़िंदगियों में रंग भी भरती हैं।

सन् 2003 की कहानियों में जया जादवानी की 'आखिरी सिगरेट', रामेश्वर प्रेम की 'दी बिजनेस', कमला चमोला की 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो', संजय कुंदन की 'कोई है', सुषमा बेदी की 'गुनहगार', नरेन्द्र प्रताप सिंह की 'मरा हुआ सुअर', अजय नावरियां की 'एक धम्म सनंतनो' आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

सन् 2004 की कहानियों में पाल भसीन की कहानी 'जड़ें', जगमोहन कौर की 'यथार्थ', विजय लक्ष्मी शर्मा की 'नीम का पेड़', उर्मिल की 'न पिघलने वाली बर्फ', विष्णु प्रभाकर की 'अब्दुल्ला', ज्ञान प्रकाश विवेक की 'दिल्ली दरवाजा', मनोज श्रीवास्तव की 'इस्माइल रिक्शावाला एम.ए.पास' आदि काफी उत्कृष्ट हैं। 'इस्माइल रिक्शावाला एम.ए.पास' कहानी में एम.ए.पास इस्माइल की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है।

सन् 2005 में चर्चित कथाकार प्रियंवद की कहानी 'दावा' हंस के दिसंबर अंक में छपी। मानवीय संवेदनाओं को पूरी तरह से उघाड़ने में यह कहानी पूर्ण रूपेण सक्षम है। आत्मकथात्मक शैली में लिखित यह कहानी गिलहरी के एक छोटे बच्चे की है जो अनजाने में सोफे की गद्दी के नीचे कहानीकार से दब कर मर जाता है। सहानुभूति एवं संवेदनशीलता जीवन-मूल्यों को मजबूत करने वाले तत्व हैं जो इस कहानी में पूरी संजीदगी के साथ अभिव्यक्त हुए हैं।

सन् 2005 की चर्चित कहानियों में नमिता सिंह की 'घर चलते हैं डार्लिंग,' नीलिमा सिन्हा की 'तैंतीस परसेंट', कांतिदेव की 'खजांची', राजेन्द्र सिन्हा की 'भेड़िया धसान', रामधारी सिंह दिवाकर की 'पब्लिक', लवलीन की 'एक लड़की की मौत,' दुर्वा सहाय की 'अंधेरे में आकार लेता नाटक', नरेन्द्र नागदेव की 'शिनाख़्त', रामेश्वर द्विवेदी की 'कंठ फटी बांसुरी' आदि प्रमुख हैं जो जीवन की बहुरंगी तस्वीरों को उकेरती हैं। इन कहानियों में कहीं जीवन-मूल्यों एवं मानव-मूल्यों का ह्रास है तो कहीं विकास।

सन् 1970 ई. से सन् 2005 तक हजारों की संख्या में मानवीय जीवन-मूल्यों से जुड़ी कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन हज़ारों कहानियों एवं उनके लेखकों के दृष्टिकोण के संबंध में यदि परिचयात्मक टिप्पणी भी की जाये तो एक बृहद् पुस्तक तैयार हो सकती है। ऐसी स्थिति में इस व्यापक परिदृश्य को एक आलेख में समेटना अत्यंत दुष्कर है। फिर भी मेरा प्रयास रहा है कि जहाँ तक हो सके चर्चित कहानियों को इस आलेख के छोटे से कलेवर में समेटा जा सके।

ooo

प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में राजनैतिक चेतना

❑ डॉ. हारून रशीद खान*

प्रख्यात आलोचक और नाटककार डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय का पहला नाटक ''इला'' सन् 1989 में, दूसरा ''साँच कहूँ तो'' सन् 1993 में और तीसरा ''फिर से जहाँपनाह'' सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। ''इला'' के फ्लैप एक पर कहा गया है- नाटक ''सुद्युम्न'' की त्रासदी से उत्पन्न अति यथार्थवादी आतंक और मिथ्या यथार्थ को अतिक्रान्त करता हुआ कोई सच हमारे सामने खड़ा हो गया है....और जिसे सिर्फ इस वजह से नहीं दुत्कारा जा सकता है कि वह हमारी परिधि में नहीं समा रहा।... असंगतियों ने मनुष्य को एक साथ निरंकुश और कायर बना दिया है, वह ऊपर से जितना हिंसक दिखाई देता है, भीतर से उतना ही कमज़ोर और क्लीव है। मुखौटे सत्तायें चला रही हैं, जिनका न्यायिक वास्तविकता से कोई रिश्ता नहीं है। तथा- कथित सर्जक और बुद्धिजीवी उनकी डुगडुगी पर नाच रहे हैं। ऐसे में साधारण जनता इस क्रूर सनक का शिकार हो रही है। अतिचार, अधूरापन, एकांगिकता, असंतुलन, विषयीकरण, द्वन्द्व हमारे समय की भयावह सच्चाई है, फ्लैप दो पर कहा गया है- ''समूची शालीनता और सांस्कृतिकता के जरिये विद्रूप की भयावहता को उभारने वाली तनावपूर्ण शैली में लिखी यह कृति नाटक निपुणता की ऐसी मिसाल है जिसमें बाहर और भीतर एक साथ दोहरा नाटक चलता है। जो खुद एब्सर्ड हुए बिना उस दुनिया को उजागर करता है, जो इंच दर इंच एब्सर्ड है।'' यदि ध्यान से देखा जाय तो ये बातें ''फिर से जहाँपनाह'' पर भी लागू होती हैं।

इन नाटकों के अवलोकन से लगता है कि नाटककार के कुछ प्रत्ययित या मूलभूत विचार हैं, जो बीज रूप में ''इला'' में मिलते हैं। जैसे-मुख्यत: सत्ता-राजा और राजनीति तथा पुरुष-स्त्री और उनके बीच के रिश्ते। उद्देश्य है-यह दिखाना, या संकेत या संदेश देना कि अन्याय, दम्भ, बलात्कार और असत्य को रौंदकर कैसे खड़ा होता है- (या हो सकता है) सत्य।

पहले मैं पुरुष और स्त्री तथा इनके बीच के रिश्तों के बारे में नाटककार के विचार को लेता हूँ। और तीनों नाटकों के अध्ययन के पश्चात् पाता हूं कि इस संबंध में नाटककार का विचार स्पष्ट है कि नारी का अपहरण, उसके साथ बलात्कार, उसकी पराधीनता, उसकी यातना, उसके अपमान का मुख्य कारण पुरुष है। राजा के रूप में तो निश्चित ही। ''इला'' में श्रद्धा कहती है- ''सारे पुरुष एक जैसे कठोर होते है? (पृ०-38)''साँच कहूँ तो'' में ''सखी'' मानती है कि ''पुरुष के समान निर्मोही संसार में कोई नहीं होता।'' (पृ०-53)। ''कुटनी'' से तो नाटककार-पुरुष बहुत दोगला होता है।'' कहलवाता है (पृ०-60)। ''इला'' में श्रद्धा कहती है-''मैं एक दुर्बल नारी महाराजाधिराज से प्रतिशोध कैसे ले सकती हूँ।''... (पृ० 56)। और ''राजमती'' स्त्री को अबला और पुरुष को घमण्डी मानती है। (पृ०-70)। ''पुरुष का अहंकार

---

* *सहायक सम्पादक 'समकालीन सोच' मो० खजूरिया, पो०-पीरनगर, जिला गाजीपुर-233001*

विधाता की सुन्दर रचना को भी बिगाड़ देता है।'' (इला पृ०-53) राजमती कहती है- ''तुमने मेरा रूप और यौवन धूलकर दिया... मेरे प्राण और मेरे गान सब सोख लिये।'' (पृ० 87)। पत्नी के मन में पति ही बसा रहता है। (इला पृ०-39)। ''राजमती'' तो पति के बिना मछली की तरह छटपटाती रहती है। (साँच कहूँ तो पृ०-57-73)। ''राजमती'' कहती है-''महाराज प्राण भरतार जी हो रसिया।'' (पृ०-56) आदि। फिर भी पति/पुरुष उसे विपरीत, दुष्टा (इला-पृ०-56)। सर्पिणी, कृतघ्न, नीच (इला-पृ० 34)। धतूरा, नागिन, सोने के घड़े में भरा विष, झूठी, वाचाल, पाखण्डी, गर्वीली, चंचल नार आदि। (साँच कहूँ तो क्रमश: पृ०-48-49-73) समझता है। उस पर नाना प्रकार के लांछन लगाता है, तो नाटककार खिन्न हो जाता है- ''कितने पतित हो गये तुम्हारे विचार? (इला पृ०-36) और कुछ भी लज्जा करने की सलाह देता है। (साँच कहूँ तो पृ०-73)। नाटककार को विश्वास नहीं है कि स्त्री/पत्नी छल करेगी, चुनौती देगी, स्पर्द्धा करेगी। (इला पृ०-36)। क्योंकि ''साँच कहूँ तो'' में वह ''बीसल'' से कहलवाता है-''अरे कोई स्त्री अपने पुरुष पर संदेह कर सकती है?'' (पृ०-74)। फिर भी पुरुष यह मानता है कि स्त्री चाहे वह पत्नी हो, राजमहिषी या राजमाता हो, रानी हो, कुछ भी हो, उसे पति/पुरुष/राजा के बिना पूछे किसी प्रकार की इच्छा, यहाँ तक कि अपनी संतान के रूप, गुण, धर्म आदि के बारे में कल्पना नहीं करनी चाहिए। उसके अधिकार का तो प्रश्न ही नहीं उठता? तब नाटककार ''इला'' में मानता है कि ''ऐसे विचार मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे और भावी पीढ़ियाँ तुम्हें कोसेंगी। (पृ०-35)। किन्तु ''साँच कहूँ तो में वह नारी मुक्ति और नारी की छटपटाहट महसूस करता, उसके औचित्य को उभारने के लिए (भूमिका) भावी पीढ़ी को खड़ा कर देता है-''अरे तू औरत को क्या दाल-भात का कौर समझता है कि दाँत के नीचे रखा और चबा दिया। क्या वह पति की बाँदी है कि जरा-सा भी ऊँचा नहीं बोल सकती।... ये लोग स्त्री को समझते क्या हैं? जैसे वह फटा अंगरखा हो, जब चाहा उतार कर फेंका।'' (साँच कहूँ तो पृ० 48-49)। क्या ''पत्नी को यह अधिकार नहीं होना चाहिए?'' (पृ०-74) ''क्या लुगाई आँधी का आम होती है कि यों ही किसी के आँगन में टपक पड़े।'' (पृ०-74)। और वह स्त्री या पत्नी से यहाँ तक कहलवाता है-''तू कड़वे काम कर सकता है राजा, मैं कड़वे बोल भी न बोलूँ? कैसा है तेरा न्याय।'' (पृ०-45) नाटक के अन्त तक वह पत्नी से पति को ''मूर्ख पति'' और ''बुद्धू'' कहलवाकर इस कहावत को चरितार्थ करता है कि ''घर का बुद्धू घर को लौटा'' जब कि नाटक का अभिप्राय यह नहीं लगता। ''इला'' में नाटककार ने सुमति से प्रश्न करवाया है कि ''आपकी पत्नी का आत्म-सम्मान सुरक्षित रह सकता है क्या?'' (पृ०-69) और ''साँच कहूँ तो'' में भावज से कहलवाता है... ''क्या मान रह जायेगा उसका सगे-सम्बन्धियों में...।'', (पृ०-49) तो ''बीसल'' पुरुष से मनुष्य बनकर लौटता है, पत्नी/स्त्री के आत्म-सम्मान की रक्षा होती है। अब तक ''बीसल'' में वीरता थी अब उसमें कोमलता आ जाती है। अब तक उसमें सूर्य का ओज था। अब उसमें चन्द्रमा की शीतलता भी आ जाती है। यही तो ''इला'' में नाटककार ''वशिष्ठ'' के माध्यम से ''पुरूरवा'' को उत्तराधिकारी नियुक्त करते हुए कहता है। वहाँ वंशोन्माद और वंशाधिकार के विरुद्ध विद्रोह है, तो यहां नारी की पराधीनता, दलन और अपमान की अखण्ड और अडिग परम्परा (भूमिका) के प्रति विद्रोह। वहां ''श्रद्धा'' का प्रतिशोध है तो यहाँ ''राजमती'' का। वहाँ भी प्रायश्चित है यहाँ भी। ''इला''

कहती है–"कृतज्ञता नहीं चाहिए। होती स्त्री को उसे चाहिए होता का प्रेम।" (पृ०-80)। और यही तो "साँच कहूँ तो" के "राजमती" का चरित्र है। "इला" में श्रद्धा अपने मातृत्व के अपमान के कारण गर्विली होती है और "साँच कहूँ तो" में राजमती अपने भोलेपन, अक्खड़ता और किसी हद तक साहसी व्यक्तित्व (भूमिका) के कारण। "इला" में "सुमति" कहती है– "यह मन बड़ा विचित्र है। महाराज महल में रहते थे तो उन्हें बाहर निकलने को.... उकसाती थी, अब चले गये तो सब कुछ उदास हो गया।" (पृ०-71) और ऐसी ही स्थिति "साँच कहूँ तो" में राजमती की होती है–"सूचना घर उसके लिए भसाग बन गया है।" (पृ०-64) "इला" में श्रद्धा में कहती है... "मुझ से तो अच्छी है वह चिड़िया..." (पृ०-47) और साँच कहूँ तो" में राजमती भी स्त्री जीवन से अच्छा जंगली-जीवों, काली कोयल का जीवन मानती है। (पृ०-62)। "इला" में श्रद्धा कहती है... "राजमहिषी हूँ। कोई अधिकार नहीं है मुझे सहज जीवन जीना..." (पृ०-43)। और यही बात इस रूप में "राजमती" कहती है–"मुझे तूने नारी ही बनाया था तो रानी क्यों बनाया?... कैसा दण्ड दिया है? विधाता तूने मुझे।" (पृ०-62)।

"इला" में "मनु" और सुमति के कथोपकथन जैसी मिलती-जुलती शैली है "साँच कहूँ तो" "बीसल" और "भावज" की है। वहाँ अन्त में मनु को जब ठीक उत्तर नहीं सूझता है या "मनु" "सुमति" के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते हैं, तो कहते हैं–"परिस्थिति की जटिलता को तुम नहीं समझोगी। आइये, हम चलें राजगुरु" (पृ० 86-87)। यहाँ भी अन्त में "बीसल" कहता है–"तो अब उसे ही देखती रहना भौजाई जी, मैं चला।" (तेजी से प्रस्थान) और "इला" में जो भाव-दशा "वशिष्ठ", "श्रद्धा" और "सुमति" की होती है, वह सब यहाँ "भावज" की। यह भी सिर पकड़कर बैठ जाती है। (पृ० 48-49)। स्त्री के "दुर्वचन" की बात "इला" में भी आती है (पृ०-100) और "साँच कहूँ तो" में तो बार-बार आती है। इस "दुर्वचन" को पत्नी छोड़ने का कारण "इला" में "पुरुष" बतलाता है और यहां "बीसल" को प्रबल कामावेग से भरा, नासमझ (जो नहीं समझता की कड़वी दवा बड़ा गुण करती है) और उसकी पत्नी को अवयस्क बताकर। (पृ०-48)।

यहाँ कई जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं–ऐसा नाटककार क्यों कह रहा है कि वह अक्खड़पन, बड़बोलापन, दुर्वचन की कर्कशता, बातूनीयत, खिल्ली उड़ाने, कटुता में साहस देख रहा है। तथ्य-कथन तथा शासक मात्र की सनक, कर्त्तव्यहीनता और मूर्खता पर टिप्पणी करने का अवसर मान रहा है और "वाणी" की मधुरता की अपेक्षा वह सुघरमूरत (पृ०-42) को महत्त्व दे रहा है। तथा तर्क दे रहा है कि मखमल की म्यान हो तो अन्दर की कटारी घनी तीखी होती है। (पृ०-50)। जब कि कबीर (जो नाटककार को प्रिय लगते हैं।) ने ही कहा है कि "ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय, औरन को शीतल लगे आपहुँ शीतल होय। कहावत भी है कि बात के कारण ही आदमी पूजा जाता है और बात के कारण ही लात भी खाता है। "यह भी है कि "सत्यम् वद, अप्रियं न वद।" "बीसल" तो अपनी ही दुनिया में संतुष्ट है। उसमें असंतोष तो राजमती ही जगाती है और यह भी कहती है "धन सम्पदा धरती में गड़ी रहती है जो इसका संचय करता है, यह उसी को खाती है।" (पृ०-45) "बीसल" का यश, उसकी वीरता और धन-सम्पत्ति पर तो एक प्रकार के राजमती

के माता-पिता को भी गर्व है। (पृ०-23-24) राजमती नाबालिग है, उसे पत्नीत्व का बोध नहीं है किन्तु उसे इतिहास का बोध है, संसार के बड़ा होने का बोध है, दायजा दान है आदि का बोध उसे है। वह जानती है कि ''माथा'' कूटने से द्वार से द्वार पर आई लक्ष्मी फिर जाती है। ''ताव'' वह समझती है। अपने बाप-दादा पर उसे नाज है, (पृ०-33-36)। ''पीहर'' पर नाज है। (पृ०-43)। वह जानती है कि सेवक के लिये राजनीति खंडे की धार होती है। (पृ०-54)। पति के स्वभाव को जानती है कि उसे मीठी बातें सुनने का बड़ा चाव है। (पृ०-54)। फिर भी वह कटु वचन बोलती है, जिससे ''बीसल'' का मन ''खट्टे बोलों से दूध जैसा फट जाता है।'' (पृ०-41)। राजमती पति को परदेस में हिम्मत रखने और अक्ल से काम लेने की सीख भी देती है और यह आरोप भी लगाती है कि वह मेरी छाती पर पाँव रखकर चला गया। और उसे निर्मोही सिद्ध करने के लिये नल और दमयन्ती कथा में एक अन्य अर्थ जोड़ दिया जाता है। (पृ०-53)। ''राजमती'' इतनी ज्ञानी है कि वह जानती है कि जो दूसरों को दुख देता है वह स्वयं दुःख झेलता है। (पृ०-55) ''किन्तु यह दुख किसने दिया? अभी तो वह जा रहा है। न जाने दुख मिलेगा या सुख? (पृ०-53) ''इला'' में तो ठीक ही है कि अपने अहंकार के कारण मनु स्वयं भी दुख झेल रहे हैं और श्रद्धा को भी झेल रहे हैं। किन्तु यहां तो अभी ''बीसल'' ने दुख झेला नहीं? जाते समय वह दुखी भी नहीं है। वह तो यह मानकर जा रहा है कि ''पाण्डव राजा द्रुपद के यहाँ गुप्त रूप से रहे थे, वैसे ही रहूँगा।'' (पृ०-54) किन्तु राजमती ऐसी भविष्य द्रष्टा है, ज्ञानी है कि वह जान रही है कि वह दुःख झेलेगा ही। वह ऐसी ज्ञानी क्यों नहीं है, जो राम, रावण, युद्ध आदि के चरित्र-व्यक्तित्व को जानती हो। ऐसी ही बहुत-सी जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं। तब ध्यान जाता है इसी कथा पर आधारित शुद्ध लोकधर्मी शैली में, भिखारी ठाकुर रचित ''विदेशिया'' पर। वहाँ पतिव्रता, विनयी मधुर भाषणी सुन्दर पत्नी को त्याग कर विदेश जाना और पत्नी का वियोग-विलाप औचित्यपूर्ण लगता है। किन्तु यहाँ ऐसा क्यों?

तब नाटककार के ऐसा करने के पीछे दो कारण समझ में आते हैं। ''विदेशिया'' के रचना के समय उपभोक्तावादी संस्कृति एक प्रकार से जन्म ले रही थी और इस नाटक की रचना के समय एक प्रकार से समाज उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में आ चुका है। वहाँ ''भिखारी'' अपने समाज के यर्थाथ को प्रदर्शित कर रहे हैं इसीलिए उनका विदेशिया एक साधारण जन है और पत्नीपूर्ण व्यस्क। यहाँ रचना के पीछे नाटककार के कुछ विचार, धारणा या उद्देश्य हैं। यहाँ नाटककार स्त्री की सनातन त्रासदी (इला पृ०-117) और नारी मुक्ति के औचित्य (साँच कहूँ तो पृ०-6) को प्राणवान बनाकर उभारना चाहता है। और नाटककार उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की जड़ें सत्ता और ऐश्वर्य कामना में बहुत गहरी महसूस करता है। उसे भी उजागर करना चाहता है। इसलिये यहाँ विदेश जाने वाला राजा है। सत्ता अर्थात् राजा-राजनीति और राज कर्मचारी के चरित्र के बारे में नाटककार की कुछ अवधारणायें हैं। जिस पर मैं आगे ''फिर से जहाँपनाह'' के प्रसंग में विचार करूँगा। नाटककार कुछ बातें और सुद्युम्न के द्वारा कहता है- ''विधि-विधान उसी की सहायता करते हैं जो धनवान हो... बलवान हो।'' (पृ०-106) आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में नमक, माँ का दूध, अन्न आदि धन नहीं हैं, धन है हीरा-मोती, सोना-चाँदी, रुपया-

पैसा जो नकली है, जिसमें चमक-दमक तो है किन्तु वे जीवन के आधार नहीं हैं। लेकिन आधुनिक उपभोक्तावादी वर्ग इसी के पीछे दौड़ रहा है। (पृ०-7) ''बीसल'' को इसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करके नाटककार अपने विचार को मूर्तरूप देना चाहता है-''आप हीरों की खान के लिये नमक का घर छोड़कर क्यों आये? क्या हीरे नमक से अधिक मूल्यवान होते हैं?.... राजा के लिये प्रजा का जीवन-आधार नमक अधिक मूल्यवान होता है या चमकीले पत्थर'' (पृ०-77)। यही बात दूसरे रूप में ''विदेशिया'' में झलकती है-रुपये-पैसे से वेश्या का नकली प्रेम मिल सकता है किन्तु पतिव्रता पत्नी का नहीं, जो पुरुष को मनुष्य बनाता है या बनाये रखता है।'' ''इला'' में एक बात और मनु के द्वारा नाटककार कहता है-''नारी संग और उसकी झिड़कियों से सम्भव है वह पूरा पुरुष बन जाये।'' (पृ०-57)। यहाँ एक संकेत और मिलता है-पुरुष अपनी संतानों को पुरुष रूप में ही चाहता है। नारी अपनी संतान और पति को मनुष्य रूप में पाना-देखना चाहती है। मनुष्य को भी नाटककार ने ''इला'' में परिभाषित किया है, जिस पर मैं आगे विचार करूँगा। सुमति की झिड़कियाँ, जिसे ''सुमति'' तीखी बातें कहती है... ''चापलूस क्यों बनायेंगे? अन्य और स्वर्ण पाने वाले ऐसी तीखी बातें कहकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मारेंगे? वे तो जो कहते हैं पीठ पर कहते हैं, वहीं मैं आपकी पत्नी होने के नाते मुँह पर कह रही हूँ कि अब तो आपकी आँखें खुल जायें।'' (पृ०-70) सुद्युम्न उत्तेजित होता है। आखेट पर जाता है। लम्बे प्रवास में उसे सत्य का बोध होता है। वही बात यहाँ है। अन्तर यही है कि ''सुमति'' वयस्क है, ''राजमती'' अवयस्क। सुमति की तीखी बातें सोद्देश्य हैं-एक पुरुष के पुरुषार्थ को जगाने के लिये। इसीलिये वहाँ अपमान और प्रताड़ना नहीं है। अपमान और प्रताड़ना है ''श्रद्धा'' के साथ। ''साँच कहूँ तो'' में राजमती में भोलापन है, देश काल के कारण वह अक्खड़ है। इसलिये सहज ढंग से कही बातें भी घमण्डी, अहंकारी पुरुष/राजा (जैसा कि पुरुष/राजा के प्रति नाटककार की अवधारण है) ''बीसल'' को अपने पुरुषार्थ को चुनौती देती लगती हैं। जो तथ्य नहीं है-तथ्य बतलाने के लिए नाटककार ''बीसल'' और (उड़ीसा) के महाराजा के बीच संवाद की योजना करता है-

बीसल: ''परन्तु महाराज रानी ने हीरों के नाम पर ही हमारे पुरुषार्थ को ललकारा था।'' महाराज: ''पुरुषार्थ हो या घमण्ड हो। दोनों के बीच बहुत महीन रेखा है'' (पृ०-78) और इसके बाद महाराज से यह कहलवाकर-''एक भोली स्त्री को अपमानित और प्रताड़ित करके क्या तुमने मनुष्य होने का प्रमाण दिया?'' नाटककार यह संकेत या संदेश देना चाहता है कि पुरुष यदि मनुष्य का सा आचरण करे तो ''नारी यातना की सनातन त्रासदी'' स्वयं समाप्त हो जायेगी और पराधीनता में भी वह स्वाधीनता का सुख पायेगी। ''इला'' में ''सुद्युम्न'' कहता ही है-पराधीनता के एक वृत्त में घूमना ही नारी की स्वाधीनता है। बचपन में पिता-माता से छूटी तो पति, पति से छूटी तो पुत्र और पुत्र से छूटी तो काल।... लेकिन अरक्षित स्त्री की बड़ी दुर्गति है पुत्री? सरंक्षण में स्त्री जितनी स्वाधीन है, उतनी स्वाधीनता में नहीं। (पृ०-100)। और ''साँच कहूँ तो'' में ''राजमती'' से भी कुछ ऐसा ही कहलवाया जाता है-''विधाता ने धक्का देकर स्वर्ग से निकाल दिया। मेरी जननी ने धक्का देकर कोख से। दादा जी ने धक्का देकर पीहर निकाल दिया। प्रिय जी ने धक्का देकर नेह से। मैं कहाँ जाऊँ अकेली?.... नागी हूँ संसार के नैन में मेरे रामा। मैं कहाँ

जाऊँ?'' (पृ०-73) इसके अतिरिक्त नारी के संबंध में कुछ और बातें भी नाटककार ने ''इला'' में कही है... ''फूल को पैरों से रौंदकर दुबारा डाली में नहीं लगाया जा सकता महाराज।'' (पृ०-85)। अपने चरणों में प्रार्थी की तरह झुका पुरुष। ''पैशाचिक है यह विनय स्त्री के प्रति। वह स्त्री की सुमति को कुमति बना देती है।'' (पृ०-82)। ''तुम भी सुन लो। जो स्त्री अपनी रक्षा नहीं कर सकती उसकी रक्षा संसार में कोई नहीं कर सकता। रक्षा का अर्थ समझती हो? देह की ही नहीं, अपने अधिकार और सम्मान की रक्षा।'' (पृ०-101)। इस प्रकार ऐसी ही चेतावनियाँ जो ''इला'' में ''पुरुष'', ''नारी'' को देता है, ''साँच कहूँ तो'' मैं ''राजमती'' को इन चेतावनियों की स्वीकृति के साथ रूपित करता है। इसका प्रमाण है ''बीसल'' के लौट आने पर उसके और राजमती के बीच संवादों की योजना। उदाहरण के लिये ''राजमती'' के दो संवाद-''चिन्ता मत करो मैंने अपने ही आसरे काट दी है किसी के आगे हाथ नहीं पसारा।'' (पृ०-86)। ''मैं, मैं हूँ राजा, जिसके अब तू निहोरे कर रहा है। अरे कनवाड़े राजा, तेरे पीछे सात पग क्या चल दी कि तूने मेरा रूप और यौवन ही धूल कर दिया।... गुमान, मेरे प्राण और मेरे गान सब सोख लिये रे।... अरे तू तो बुद्धू ही रहा। जैसा गया था वैसा ही आ गया।'' (पृ०-87-88)।

और इसी ''जैसा गया था, वैसा ही आ गया'' की बात को आगे बढ़ाता दिखता है नाटककार ''फिर से जहाँपनाह'' में। ''बीसल'' कहता है... ''अरे तू गिन भी नहीं सकती, इतने हीरे-मोती लाया हूँ तेरे वास्ते रानी।''... और राजमती कहती है... ''तू ही चबा। मैं क्या करूँ इन ठीकरों का? हे स्वामी, इन्हीं ठीकरे भाटों के लिये तूने धरती माँ के लूण और नारी के लावण्य का अपमान किया।'' (पृ०-87)।.... और फिर से जहाँपनाह में ''कबीर'' कहता है... ''लो फिर आ गये ये लोग।'' (पृ०-8) और अन्त में ''वसुन्धरा'' कहती है... ''यांत्रिक बदलाव के सिवा क्या बदला है गर्व करने लायक? नए मुखौटे पहनने के लिये पुराने मुखौटे उतारने का नाटक....।'' (पृ०-94)। रही अपहरण और बलात्कार की बात, तो वह ''फिर से जहाँपनाह'' में स्टेनों के साथ मंच पर घटित होती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सत्ता अर्थात् राजा राजनीति और राजकर्मियों के संबंध में नाटककार की कुछ धारणायें हैं, जो नाटककार के विचारों का मूल-धन है। और पुरुष-स्त्री तथा उनके बीच का रिश्ता व्याज-धन। तभी तो कुम्हार की भाँति कथावस्तु रूपी चक्के पर नाटककार राजा और रानियों की ही मूर्तियाँ गढ़ता है। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं। आज राजनीति हमारे मानव पर इस कदर छा गई है कि उसके आगे आज कोई और कुछ सोचना-समझना-करना ही नहीं चाहता। हर व्यक्ति सत्तासीन या सत्ताधारी होना चाहता है। विरोध भी इसीलिये है। कोई ऋषि या तपस्वी नहीं बनना चाहता, जो समझ सके कि हमारी दुर्बलता राजमद को बढ़ायेगी। (इला-पृ०-20)। और क्षणभंगुर साम्राज्य के राजा के अन्नदाता बनने के घमण्ड को चुनौती दे सके कि तपस्वी को अन्न देती है धरती, आकाश उसे वायु देता है और उसकी तपस्या ही उसे तेज देती है। (इला-पृ०-20) और सावधान कर सके कि ''सन्मार्ग के विषय में एक भी अपशब्द कहा तो तुम्हारा यह मस्तक धरती पर लौटेगा।'' (इला-पृ०-21)। ''और वह उत्तेजित होकर तलवार की धार को कुंठित कर सकने के लिये पाषाण की कठोरता को धारण कर सके।'' (इला-पृ०-21)। और ऐसा करने में वह सक्षम हो कि एक दिन राजा में मानवता ज्ञो न स्त्री है,

न पुरुष वह केवल मनुष्य है, परस्पर संतुलित समन्वय में सारभूत, (इला-पृ०-128) जन्म ले और वह पूर्ण सम्मान के साथ ऋषि से ऐसा प्रश्न कर सके कि सोने के घर का आवरण हटा कर उसमें बंदी सत्य को प्रकट करने का दायित्व किसका है? ऋषि या राजा का? (इला-पृ०-129) तथा ''रूढ़ियों के ढोने से अच्छा नहीं है क्या नई परम्परा का निर्माण?'' (इला-पृ०-130) और ऋषि की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसके शब्दों को न्यायालय की गरिमा देकर यह पूछ सके कि नीति संगत क्या है? तब ऋषि भी ऐसा हो कि वह अपने को, भले ही विवशता के कारण ही, विकृति का भागीदार मानते हुए प्रायश्चित करे और यह घोषित करे कि ''अब से राजनीति और स्मृति ग्रन्थ राजा नहीं बनायेगा। वह बनायेगा ऋषि जिसके लिये सत्ता धूल के बराबर है। जिसके न्याय के केवल प्रजा नहीं अपराधी राजा भी दण्डित होगा। तभी होगा इस कुचक्र का अन्त।'' (पृ०-131) और यही बात सार रूप में ''फिर से जहाँपनाह'' में नाटककार कबीर के द्वारा दुहरवाता है,-''क्या हम स्वयं कहीं-न-कहीं उत्तरदायी नहीं है इस हालात के?... हिस्सा लेना होगा स्वयं के बदलाव में.... खड़े होना होगा अकेले...।'' (पृ०-94-99) जो हमें कोरा उपदेशात्मक, फलसफा लगता है। यह अच्छा अवसर था। मध्यकालीन संतों की भूमिकाओं पर विचार करने का। लेकिन नाटककार तो ''नियति'' को मानता है, जिसका बीज भी ''इला'' में मिलता है। मनुष्य की नीति के पीछे नियति का अदृश्य हाथ होता है...''इसलिए अपनी नियति में से होकर गये तुम, वन में से होकर नहीं।'' (पृ-92)''इसलिये परिवर्तन अपने आप में शक्ति है, के बाद ''खड़े होने'' और अकेले न होने'' की बात कहकर वह फिर ''माटी कहे के'', निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। किन्तु नाटककार की रचना-दिशा या विचार-धारा के अनुसार लगता है कि कैसे खड़ा होगा? और कैसे प्रजातंत्र सर्वोत्तम है? क्योंकि नाटककार में उसका वह विश्वास झलकता है कि जब विचारक, चिंतक, साहित्यकार, बुद्धिजीवी आदि (जिसमें वह अपने को भी सम्मिलित रखता है।) सत्ता को धूल समझने लगेंगे तो उन्हें विधान-रचना और उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार मिल जायेगा। और वे ऐसे पुरुष को उत्तराधिकारी नियुक्त करेंगे जिसमें चन्द्र की शीतलता और सूर्य के ओज का सामंजस्य होगा और शासनतंत्र की बखिया उधेड़ने वाले सच्चे मनुष्य की इच्छा ही उसका आदेश होगा। क्योंकि नाटककार ''सुद्युम्न'' के द्वारा कहता है-''कभी-कभी पूरी व्यवस्था, व्यवस्था के शिकार सच्चे मनुष्य से, छोटी हो जाती है।'' (पृ०-121) नाटककार के विश्वास का आधार भी है, जो उसके इन तीनों नाटकों के अध्ययन से समझ में आता है।

पौराणिक काल और मध्य काल में विरोध की समस्या राजमहलों या राजा-राजाओं के बीच थी, साधारण जन फरियादी मात्र था। अब प्रजातंत्र में साधारण जन प्रतिरोधी शक्ति के रूप में उभरा है, किन्तु अभी भी वह मुखौटा संस्कृति को समझ नहीं पाया है और उसी का शिकार है। इस नाटक ''फिर से जहाँपनाह'' में एक पात्र कबीर (जो क्या है? स्पष्ट नहीं होता, किन्तु नाटककार उसका परिचय आम आदमी सूत्रधार के रूप में देता है।) के द्वारा नाटककार जन्म लेती प्रतिरोधी शक्ति को अगाह करता है-तानाशाही के प्रजातंत्र की यात्रा कठिनतम रही है। और इस पर एक पात्र वसुन्धरा (विरोधी पार्टी की नेत्री) से प्रश्न करवाकर कि- ''इस यात्रा से मनुष्य को आखिर मिला क्या?'' ''कबीर'' के रूप में स्वयं उत्तर देता है-''यह प्रश्न हम अपने-आप से क्यों नहीं पूछते? क्या हम स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं?''

(पृ०-94) क्योंकि पीछे नाटककार यह दिखा चुका है कि कैसे विरोधी पार्टी के "हल्ला बोलने" और "कृपाण उठाने" के लिये नारा देने वाले लोग ही सत्ता के हाथों बिक जाते हैं। और वसुन्धरा को सिर फोड़ लेना पड़ता है। (पृ०-30) और यह अनुभव करते हुए भी कि "दाल में काला है।".... (पृ०-37) जब वह आयोग के सामने बखिया उधेड़ती है। कैसी मर्यादा? किसने किया है मर्यादा का पालन जो मैं करूँ? आदि। (पृ०-43) तो प्राय: यह वैसे ही है जैसे "इला में वृद्धा और स्त्री। किन्तु वहाँ वे फरियादी हैं और यहाँ वह विरोधी दल की नेता है जो यह कहते हुए भी कि "तुम सब सत्ता के भेड़िये हो, मिलीभगत है तुम्हारी...। (पृ०-43) राजा/प्रजातंत्र में मुखिया, के जाल में फंस जाती है। और तानाशाही को विकल्प बताती है। (पृ०-50) लगता है कि वसुन्धरा से ऐसा विकल्प चुनवाने के पीछे नाटककार के मन में साधारण जन की ही भावना है, जो कि आज भी कुछ लोगों के मुख से निकलती है कि "ऐसे अच्छा तो अंगेरेजवन के राज रहे।" तब "कबीर" के रूप में नाटककार को यह कहना पड़ता है कि "वसुन्धरा यह मत भूलो कि मानव सभ्यता की सर्वोच्च राजनैतिक अभिव्यक्ति प्रजातंत्र है।" (पृ०-50) इसके पीछे संभवत: नाटककार की यही भावना है कि जन्म लेती प्रतिरोधी शक्ति अभी अपरिपक्व है, उसे अपने में बदलाव लाना है, सत्य को पहचानना है और उसे अपने बूते पर खड़ा होना है। जब एक साधारण मन सत्य को समझकर, ऐसी "नीति" को लेकर जो अपने लिये भी और दूसरों के लिए भी मंगलकारी, शुभ तथा सम्मान-जनक होगी, खड़ा होगा तो वह अकेला नहीं रह जायेगा। यही है "फिर से जहाँपनाह" का संदेश।

अब हमें देखना है सत्ता अर्थात् राजा, राजनीति और राजकर्मियों के सम्बन्ध में नाटककार के विचार क्या हैं? लोग, प्रजा, जन या जनहित जैसे शब्दों का प्रयोग करके या इनके बहाने राजा अपनी इच्छा, चाहत, नीति, नियम, अपने हठ को सत्य सिद्ध करना चाहता है। "इला" में "मनु" राजा कहता है... "क्या करें जनहित में हमें यह कठोर निर्णय लेना पड़ा।" सहसा उत्तेजित होकर वशिष्ठ कहते हैं... "जनहित? शासक के पास क्या इससे अच्छा शब्द नहीं होता। अपने पापों को ढकने का? मनु व्यंग्य से-हम वैरागी नहीं है गुरुदेव।" (पृ०-46) "फिर से जहाँपनाह" अंक-एक में यह बात बड़े अच्छे ढंग से रूपायित होती है। एक दो उदाहरण देखें। "राजा/प्रजातंत्र का मुखिया... चक्रवर्ती : ... बेवकूफ... चपरासी की नियुक्ति है या गर्वनर की?... अच्छा दल का कार्यकर्त्ता है...चिपका दो... अरे, बेचारा गरीब है, उम्र तो अधिक होगी ही, नियम शिथिल कर दो।" (पृ०-11) एक और कथोपकथन देखिए चक्रवर्ती: और तुम्हारें स्टील प्लांट की क्या प्रगति है त्यागमूर्ति? त्यागमूर्ति: धड़ाधड़ पुलिस के डंडे ढल रहे है श्रीमन्। चक्रवर्ती: आखिर पब्लिक सैक्टर है, वहाँ जनहित के काम नहीं होंगे तो कहाँ होंगे। (पृ०-12) और दृश्य आठ के अन्त में "कबीर" कहता है "उसी का शहर, वही मुद्दई वही मुंसिफ"। (पृ०-48) अंक दो में तानाशाह शासक "आदमशाह" कहता है-कानून? नूरशाह। हमारा हुक्म कानून है, हमारे अल्फाज़ खुदा के अल्फाज़ हैं।" (पृ०-54)"बड़ी बेतुकी तोहमते लगाई जा रही हैं हम पर। अरे हमने ढेरों फतहें रिआया की झोली में डालीं। उसका सर दुनिया में ऊँचा उठाया।" (पृ०-59) राजा या पुरुष हारना नहीं जानता। "हारना मैंने कब सीखा है?" (इला-पृ०-57)। "फिर से जहाँपनाह" में "शाह...हम शिकस्त के आदि नहीं है।" (पृ०-63)

राजा की चाहत या कथनी और करनी में अन्तर होता है। इसमें कोई संबंध नहीं होता, ये दो अलग बातें होती है-"दूसरों की कन्याओं से प्रेम करना और अपने लिये कन्या चाहना दो अलग बातें हैं देवी।" (इला-पृ०-39) ऊपर से कुछ दिखाओ, भीतर कुछ और (पृ०-39)। "शासक की पीड़ा इस तरह प्रकट नहीं होती कि उसे देखा जा सके। जब वह दुखी दिखता है तो समझो वह दुख व्यक्त कर रहा है, जब वह हंस रहा होता है तो समझो वह हँसी दिखा रहा है। इससे उसके अपने सुख-दुख का कोई सम्बन्ध नहीं होता।" (इला-पृ०-62)

ऐसी ही बहुत सारी बातें जो नाटककार यहाँ पौराणिक राजा "मनु" से कहलवाता है, उन सबको वह "फिर से जहाँपनाह" में तानाशाह शासक-शाह और प्रजातंत्र का मुखिया-चक्रवर्ती के आचरण में बड़ी ही कुशलता से ढाल देता है। अंक-एक के दृश्य-दो में कश्यप की मृत्यु का समाचार पाकर चक्रवर्ती और अंक दो के दृश्य पाँच में अपनी बेगम के भाई "इम्तियाज़" के मारे जाने और सिपहसालार असदुल्लाह खां की अधजली लाश दरिया के किनारे मिलने का समाचार सुनकर "आदमशाह" जो आचरण प्रदर्शित करता है, इसके उत्तम उदाहरण है। विरोधी दल के नेता "कश्यप" को प्रजातंत्र का मुखिया मरवा डालता है, इम्तियाज, चचाजान और असदुल्लाह को तानाशाही शासक मरवा डालता है, और ये दोनों ऐसा शोक प्रकट करते हैं कि कोई इनका खून का रिश्ता रखने वाला अपना या हमदर्द भी नहीं करेगा। बड़ा ही सुन्दर जीवन्त चित्र खींचा है नाटककार ने बानगी के लिये कुछ संवाद देखें-"चक्रवर्ती : आदरणीय कश्यप जी का देहान्त हो गया। देखिये मिस्टर असलम कितना करुण अन्त हुआ इस कांड का। (सिपाही से सक्रोध) डाक्टर झख मार रहे थे क्या? हम इन्हें कितनी महंगी शिक्षा देते हैं। अस्पतालों में महंगे उपकरण मंगवाते हैं। विदेशी मुद्रा खर्च होती है इसमें। हमारी विदेश यात्रा में कटौती होती है। हमारे इतने बड़े बलिदान के बाद भी ये लोग नहीं बचा सके एक मूल्यवान प्राण। महानगर का इतना बड़ा चिकित्सालय,... हमारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया-महान देशभक्त कश्यप जी की मृत्यु से जो क्षति हुई है इसकी पूर्ति इक्कीसवीं सदी में नहीं हो सकती। (सक्रोध) कुछ लोग हंगामा खड़ा करके जनता की शांति भंग करते हैं। वे देश की एकता और अखण्डता को नष्ट करते हैं, परिणाम क्या होता है? (रूआँसा) मारे जाते हैं बेचारे निर्दोष नागरिक, अबला स्त्रियाँ, अबोध बच्चे और कश्यप जी जैसे देशभक्त। आसूँ पोंछता है।" (पृ०-16-17) शाह: (नकली दु:ख से) "ऐं.... यह क्या किया। कासिम खान ("फौजी से") गुस्ताख, नमकहराम। ओह मेरा बच्चे इम्तियाज़ को मार डाला बेरहमों ने।" (पृ.-70) "मालिका-ए-आलिया को खबर दो और तफसील से हमारे दिल के हाल बताना... कितने रंजीदा हैं... कैसे-कैसे तड़प रहे हैं हम।" (पृ०-77)"शफी खान। हमारे गम और गुस्से की तस्वीर रिआया के दिलों पे खींची जाय।"... मरहूम सिपहसालार असदुल्लाह खाँ को "नगीना-ए-मुल्क" ऐलान किया जाये। उनका जनाजा शाही शान से निकले। सिपहसालार को इम्तियाज़ के करीब दफ़न किया जाये। बेजोड़ मकबरा बनाया जाये।" (पृ०-75)

राजा अन्त:पुर में भी राजनीति करता है और वह इसे अपनी नियति मानता है। "बाँट कर सोचो, बाँटकर देखो, ऊपर से कुछ दिखाओ, भीतर कुछ और।" (इला-पृ०-39)। जन्मी अपनी पुत्री की ओर संकेत करते हुए कटुता से, श्रद्धा कहती है-"हत्या कर दीजिये उस निरीह

की, और राज्य में ढिंढोरा पिटवा दीजिये कि बेटा हुआ था, मर गया।'' मनुः (कठोरता से) ''राजा के लिये यह भी असंभव नहीं है। लेकिन मैं इतना पतित नहीं हूँ। एक अनर्थ को दूसरे अनर्थ से पाटना मेरी नियति नहीं है।'' (इला-पृ०-40)। किन्तु ''फिर से जहाँपनाह'' में नीति बदल जाती है। चक्रवर्तीः ''कश्यप'' को ही नहीं अपनी स्टेनों जिसके साथ उसका अवैध संबंध है, को भी मरवा डालता है। आदमशाह अपने शक के कारण इम्तियाज, असदुल्लाह आदि को मार डालने का षड्यन्त्र रचता है। बाँट कर सोचो, बाँटकर देखो के लिये तो चक्रवर्ती और आदमशाह का चरित्र साक्षात् प्रमाण है। अन्तःपुर में राजनीति ''फिर से जहाँपनाह'' के अंक दो-दृश्य तीन और पाँच में प्रत्यक्ष दिखलाई देती है।''

इसी प्रकार झूठ, प्रवंचना, क्रूरता, दोमुंहापन-उनके (राजा के) राजमुकुट की मणियाँ हैं। ''इला'' में यह बात नाटककार श्रद्धा के मुख से कहलवाता है, और उसे फिर से जहाँपनाह में कार्य रूप देता है। राजा भीतर कुछ बाहर कुछ होता है कि बात मैं ऊपर कह आया हूँ। इसी से मिलती-जुलती एक बात और है मनु कहते हैं-''मूल्य, विवेक, विधि-विधान किसी पर भी राजनीति को भूलकर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वही हमारी प्रभुसत्ता की धुरी हैं। ''राजा के लिये राजनीति से मानव-नीति बड़ी नहीं होती। (इला-पृ-60) किन्तु इस बात को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करता है नाटककार ''फिर से जहाँपनाह'' में जरा देखें, वर्मा, नए साल का बजट अनुमोदन के लिए लाया हूँ।

चक्रवर्तीः हाँ बताइये। वर्माः इस बजट में कंप्यूटर, टी.वी., रेशमी कपड़े, शराब, सिगरेट जैसी विलासिता की चीजों पर सौ प्रतिशत टैक्स बढ़ाने का प्रस्ताव है। इससे देश को पाँच हजार करोड़ की आय होगी। जिसे हम चक्रवर्तीः (व्यंग्य) यतीमों में बाटेंगे।... आगे बताओ....।

वर्माः जो जीवन रक्षक पदार्थ है, जैसे नमक, गेहूँ, तिलहन, मोटर, कपड़ा, मिट्टी का तेल आदि। इन पर टैक्स पर साठ प्रतिशत छूट.... चक्रवर्तीः (सव्यंग्य) इससे कितनी आय बढ़ेगी? वर्माः केवल तीस करोड़ का घाटा होगा। परन्तु गरीब जनता को कई गुना राहत मिलेगी। चक्रवर्तीः इतनी-सी मामूली राहत के लिये तुम विलासिता पर टैक्स बढ़ा रहे हो। वर्माः हमारी सरकार की नीति है गरीबी-अमीरी की खाई को कम करने की। चक्रवर्तीः लेकिन हमने मूल्यों की राजनीति करने की घोषणा की है, आप जानते हैं ना। वर्माः जी इसीलिये तो...। चक्रवर्तीः क्या खाक इसीलिये तो...। आप खाक करते है मूल्यों की राजनीति। अरे हम विलासिता का मूल्य ऊँचा कैसे रख सकते हैं? जीवन-रक्षा का मूल्य कैसे घटा सकते हैं? गरीबों का जीवन विलासिता से अधिक मूल्यवान है कि नहीं? वर्माः कल ही तो आपने भाषण दिया था... चक्रवर्तीः दिया ही था न, किसी का कुछ लिया तो नहीं। भाषण तो हमें देना ही पड़ता है। पड़ता है कि नहीं...। वर्माः लेकिन गरीबों के बारे में...। चक्रवर्तीः अच्छा वर्मा जी, जरा विलासिता को परिभाषित कीजिये। अरे भैया, जिसे रोटी नहीं मिलती, उसके लिये रोटी भी विलासिता ही है। है कि नहीं? मंत्री जी, जमाना बैलगाड़ी से सुपर सोनिक तक पहुँच गया है और आप हैं कि बैलगाड़ी हाँक रहे हैं। (चारों ओर देखकर) बताओ कहाँ है गरीबी? हमें तो कहीं नहीं दिखती...।

वर्मा: हाँ, माननीय यहाँ तो...। चक्रवर्ती: भगवान पर भरोसा रखो। करतार ने दुनिया ही ऐसी रची है, ऊँच-नीच तो रहेगी ही। पापी दण्ड भोगेंगे, और पुण्यात्माओं को दण्ड देने वाले हम कौन? विधाता के न्याय में बाधा डालने वाले....। (पृ०-25-26)

तब यही ''इला'' के ''अनुरुंधती'' और ''वशिष्ठ'' के बीच का संवाद (पृ०-108) उद्धत करने से मैं अपने को नहीं रोक पाता-अनुरंधती : न समझी हो कुटनीति... पर, काम तो आपको अपने विवेक से ही लेना था। आप राजा के कर्मचारी थोड़े ही हैं-राजगुरु हैं।

वशिष्ठ : (निराशा से) कहने भर को। सत्ता तो राजा की ही होती है न। राजपुरोहित भी उसी के अधीन है। धर्म एक मुहर है, जिसे राजा अपने संविधान पर लगाकर स्वयं को सुरक्षित कर लेता है और हम, सब कुछ जानते हुए भी चुप रहने को विवश हैं।

किन्तु ''फिर से जहाँपनाह'' का न तो ''वर्मा'' चुप रहता है, न वजीरे आजम ''मंगल सिंह''। परन्तु गरीब जनता का ध्यान रखने की बात कहकर भी जो रास्ता ये इख़्तियार करते हैं, वह उसी सत्ता का है, जिसके बारे में ''इला'' में नाटककार ने कहा है-''सत्ता निर्मम है, विकराल है, उसकी प्रकृति पशुता की है, जो कभी न थमने वाली आंधी है। उसकी महत्त्वाकांक्षा सभी को अपने अंगूठे के नीचे रखने की राक्षसी भूख है।'' (पृ०-62)... ''हमेशा कुटिलता, क्रूरता, कठोरता... कपट....। कोई सीमा है इसकी'' (पृ०-67)। फिर से जहाँपनाह में नाटककार इस रूप में कहता है-नये मुखौटे पहनने के लिये पुराने मुखौटे उतारने का नाटक। (पृ०-94)। राजकर्मचारी के बारे में जो बात ''इला'' में कहीं गई है-''कर्मचारी नियंत्रण से बाहर हो गये है... प्रजा से घूस लेते फिरते हैं....।'' (पृ०-97)

वही बात ''साँच कहूँ तो'' में सखी-दो से कहलवाई गई....''अरी, यह कोई राज कर्मचारी है, घूस लिये बिना कुछ उगलेगा नहीं।'' (पृ०-82)। तानाशाही काल में वह तरक्की करके चापलूस और मक्कार होकर सत्ताधारी को घेरे रहने लगा। (पृ०-59) और कहने लगा है-''जो बादशाह हम उसके गुलाम।'' (पृ०-89) प्रजातंत्र काल में चैरिटी ''एटहोम'' से शुरू होने लगी है। (पृ०-11) तानाशाह जो घोड़ा नहीं खच्चर चाहा था। (पृ०-70) अब हरामी चीज़, बड़े काम का हो गया है। (पृ०-20)। मौखिकआदेश पालक, भीतर बदबू भरी है। (पृ०-56) बाहर फिटफाट। ''इला'' में राजकर्मचारी को सबके सामने डांटने पर उसके मनोबल को गिराना माना गया है... ''रक्षा कर्मी राजा के हाथ-पैर होते हैं, इन्हें इस तरह अपमानित करोगे, धिक्कारोगे तो इनका मनोबल नहीं टूट जायेगा क्या।'' (पृ०-60) ''फिर से जहाँपनाह'' में शासक उसे सबके सामने जलील करता है, किन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं। क्योंकि ''सत्ता के लिये प्रजा को... मनुष्यता को... सबको... घूरे पर फेंक दो।'' (इला-पृ०-61) और ''नीति के नाम पर सत्य सत्ता के पैरों से रौंदा जाता है। झूठ के मुलम्मे को चमकाया जाता है सत्य की तरह-यही सत्ता का चरित्र है। (पृ०-30) इला की दीक्षा अब अपने शासक रूपी गुरु से प्राप्त कर दीक्षित हो गयी है और पराए वैभव का प्रदर्शन न करने वाला घास के लोभ में पड़कर शिकारी के गड्ढे में गिरकर, न निकल पाने को विवश या निकलने पर अंकुश से चलने वाला हाथी जैसे सवारी बनकर रह गया है। (इला-पृ.-108) ''फिर से जहाँपनाह'' में ''गुणगान'' और ''काली प्रसाद'' के चरित्र प्रत्यक्ष देखें-

मंगलम : वो मुखिया जी जानना चाहते थे-"समय सारणी" पर छापा डाल दिया।
गुणगान : सर, मौखिक आदेश से कैसे.... कुछ लिखित मिल जाता सर।
मंगलम : मुखिया जी के मौखिक आदेश से तुम्हारी एक मिन्ट में छुट्टी हो सकती है।
गुणगान : सर, सर, आरोप क्या लगाया जाए?
मंगलम : सचिव आप हैं या हम?.... आपकी अक़्ल और कब काम आएगी?
गुणगान : कल सर।
मंगलम : ठीक है, मामला निपटाकर कल सूचना दो।
गुणगान : सर! आदेश में सिर झुका कर प्रस्थान (पृ०-19-20)
काली : बड़ी किरपा। अब की परमानेंट चौकीदार की जगह है ना।
त्यागमूर्ति : अरे, तू अफसर हो गया है अफसर। कुर्सी पर बैठे-बैठे सोते रहना। सरकारी दफ्तर नहीं देखे हो क्या?
काली : नहीं सरकार। सिर्फ थाना देखे हैं।
त्यागमूर्ति : देख लोगे। समझ जाओगे, लेकिन खबरदार।
काली : (हड़बड़ाकर) क्या मालिक।
त्यागमूर्ति : हमको धोखा दिया तो ठीक नहीं।
काली : (गले पर हाथ रखकर) गले की कसम साहब हम आपके हुक्म पर जान दे दूँगा।
त्यागमूर्ति : ठीक। हंमारी किरपा रही तो और भी तरक्की करोगे। (काली पैरों पर लोटता है। (पृ०-22)

इला में वशिष्ठ कहते है-"राज्याधीन तपस्वी, ज्ञानी, कवि, कलाकार सबकी प्रतिभायें स्वयं निस्तेज और निष्प्राण होकर राजा के प्रभामंडल को ही बढ़ाती हैं।" (पृ०-109) "फिर से जहाँपनाह" में यह बात अंक-एक, दृश्य दो में पत्रकार द्वारा साक्षात्कार, अंक-दो के दृश्य-एक में आदमशाह के राजसभा की कार्यवाही का "मुल्क के मशहूर कवि जनाब कुमार दास-"जुगनू" के लिये कसीदे से शुरुआत और-निम्न संवाद योजना से दृश्यता को प्राप्त होती है।

मंगलम : इन शायरों, फनकारों, अदीबों के लिये हुक्म?
शफी : (कान में) दरबारी बना लें हुजूर, बँधे रहेंगे बाड़े में।
शाह : इन्हें दरबारी मुकर्रर किया जाता है। (शफी खान से) दरबारी अदब सिखा दो इन्हें।
शफी : आप लोगों को मुल्क की तरक्की यानि सुल्तान की बुलंदी और कामयाबी को अपने फन का मौज़ू बनाना है। ऐसी राग-रागनियाँ निकालना है। जिनमें दरबारी की शान, जहाँपनाह को रहमदिली, रिआया से उनकी हमदर्दी, कानून पसंदगी बगैरह का सुर हो। अदीब सरकार की गैबी-ताकत और अजीमुश्शान कारनामों का पुरअसर तस्वीर खींचो। बदले में खाना, कपड़ा, मकान मुफ़्त। वजीफे और इनामात ऊपर से, समझे।
कलाकार : जी हुजूर।

केवल प्रजा नहीं अपराधी राजा भी दण्डित होने की जो बात नाटककार ने "इला" में (पृ०-131) कही थी, और प्रजातंत्र में इसके लिये जो "आयोग" की व्यवस्था की गई है

उसका भी स्वरूप, उसकी भी कार्य प्रणाली क्या है? इसको दृश्य प्रदान करने के लिए ''फिर से जहाँपनाह'' के अंक एक में दो दृश्यों (सात और आठ) की बखूबी योजना की गई है।

''इला'' में राजनीति के लिये कूटनीति, क्रूरनीति, दम्भनीति, छलनीति आदि शब्दों का प्रयोग नाटककार ने किया है, वह यहाँ ''फिर से जहाँपनाह'' में पूर्णत: दृश्य है। सभी एक दूसरे को छलने में लगे हैं। पौराणिक काल में ''मनु'' ने छला ''श्रद्धा'' को किन्तु सफल नहीं हुआ। और उसे सन्यास लेना पड़ा। तानाशाही शासक ''अदमशाह'' उसी छलनीति को अपनाकर जिन्हें मारना चाहता था, वे भी उसी छलनीति से उसे मार डालें। नाटककार ने वहाँ शाह से कहलवाया है....''बेईमान-मक्कारो, फरेबियो... मैं... मैं.. सबको फाँसी पर लटकाऊँगा, मैं आऊँगा... मैं फिर आऊँगा। (पृ०-90) और वह आता है नूरशाह के रूप में। फिर प्रजातंत्र में मुखिया चक्रवर्ती के रूप में। और फिर मदन, दल-बदलू अब्दुल्ला और गुँडा काली उसी रूप में आते हैं, चक्रवर्ती को हराकर। यहाँ चक्रवर्ती से नाटककार कहलवाता है...।''(स्वागत) लो जीत गया भ्रष्टचारी मदन मिसिर, दल-बदलू अब्दुल्ला और गुँडा काली। मैं हार गया। अकेला...।'' (पृ०-93) यहाँ अकेला शब्द का प्रयोग अब इस नीति के कमज़ोर पड़ने का संकेत देता है। इसीलिये नाटककार ''प्रजातंत्र'' को मानव सभ्यता की सर्वोच्च राजनैतिक अभिव्यक्ति बतलाता है और देखने के लिये कहकर यह भी संदेश देता है कि यदि प्रतिरोधी शक्ति के रूप में जन्म लेता साधारणजन अपने उत्तरदायित्वों को समझने लगे तो इस कुचक्र का अन्त हो जायेगा। क्योंकि हत्या के दौर से निकलकर सत्ता के अहंकार को चूर-चूर, कर कूड़े के ढेर पर फेंक देने की स्थिति आ गई है। (पृ०-94)

मेरी समझ में रचनाकार के विचार सही हैं या गलत, उससे हमारी सहमति है या नहीं, ये या ऐसे प्रश्न समीक्षक के लिये महत्त्वपूर्ण नहीं होते। उसे यह देखना है कि जो विचार-या बात रचनाकार कह रहा है, उसे वह कह या प्रस्तुत कर पाया है या नहीं। नाटककार डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के पास शब्दों का भण्डार है, उसे प्रयोग में लाने की कला है उनके पास। अपने विचार को गति देने के लिए वह तर्क शैली अपनाते हैं। जब तर्क चूकने लगता है, तो वह बड़े कौशल से फिर उसे अपनी राह पकड़ा देते हैं। राजनैतिक हालात को उसकी पूरी लज्जत और चासनी के साथ बड़े कौशल से अभिव्यक्त करने की उनमें सामर्थ्य है। वस्तुत: अपने आदर्शों और पूँजीवादी दुनिया के बीच अन्तर्विरोधों का जितना ज्ञान लेखकों-कलाकारों को होता है, उतना ही उग्रता के साथ अपनी जबरदस्त कला की शक्ति का इस्तेमाल करके शोषण पर आधारित सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था के दुष्कर्मों, शोषितों-पीड़ितों की ओर हृदयहीनता के व्यवहारों, दौलत की ताकत तथा मानवीय मर्यादाओं के कुठाराघातों आदि पर करारा प्रहार लेखक-कलाकार करता है। परन्तु यहाँ एक ही शंका है कि रंगमंच-माध्यम को आईना और मशाल के रूप में प्रयुक्त, प्रजातंत्र को बेहतर बनाने के लिये सामान्य जन (दर्शक) में आंकाक्षा और शक्ति पैदा करने का जो नाटककार का प्रयास है, वह विशेषकर ''फ़िर से जहाँपनाह'' में जो इलैक्ट्रानिक उपकरणों का इतना सहारा लिया गया है , जिसके कारणं यह नाटक अत्याधुनिक इलैक्ट्रानिक उपकरणों से सुसज्जित प्रेक्षागृह की माँग करता है, इससे सफल होगा? लेकिन संतोष इसी बात का है कि नाटककार पाठक की सहृदय सोच और आस्वादन

में बाधा के प्रति सचेत है। (इला की भूमिका-पृ०-10) तथा पाठक के मन में प्रवृत्तियों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया और विरोध जगाने (साँच कहूँ तो की भूमिका-पृ०-6) का उद्देश्य है और फिर से ''जहाँपनाह''को वह पाठकों और रंगकर्मियों को भेंट करना चाहता है।

निष्कर्षत: लोक में राजनैतिक चेतना जीवित रखने के प्रयास में लिखे गये ये नाटक, इस बात के प्रमाण है कि नाटककार इस ऐतिहासिक तथ्य से बखूबी परिचित है कि जनता का संपर्क राजनीति से टूट जाने तथा राजनैतिक प्रश्नों के प्रति उसके उदासीन हो जाने से किसी भी वंश या व्यक्ति को शासक मान लेने के फलस्वरूप उसके अन्दर विकसित निष्क्रिय और आत्मसमर्थन प्रवृत्ति के कारण ही देश को सुदीर्ध काल तक बाहरी सत्ताओं को सहन करना पड़ा। अब जब बड़ी कठिनता से हमने स्वतंत्रता हासिल की तो हमें सजग रहना है कि हममें राजनीति के प्रति संकीर्ण आत्मश्लाघा की भावना उदय न हो और हम फिर निष्क्रिय न हो जायें। ये नाटक नाटककार की इस भावना का भी बोध कराते हैं कि नाटक, साहित्य की दिशा में ही रचनात्मक क्षमता प्रमाणित नहीं करता, उसका राजनैतिक महत्त्व भी है।

वास्तव में ये एक-दूसरे के पर्याय हैं और रंगमंच ही वस्तुत: नाटक की आत्मा है तथा रंगमंच की जीवंतना अभिनयाश्रित है। रंगमंच और अभिनय ही वह अनिवार्य और आधारभूत तत्व है जिसके बिना नाटक की संरचनात्मक और विधानगत जटिलता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, तथा उसके प्रभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। नाटक के दृश्यत्व को ग्रहण करने का गुण ही काव्य है, अत: रंगमंच माध्यम बनता है पर ऐसा माध्यम, जिस पर भावों और अनुभूतियों का मूर्त स्फुरण होता है। स्वतंत्र रूप से नाट्यालेख की अलग स्वायत्तता है। जबकि नाटक का प्रदर्शन भी अपने-आप में स्वतंत्र अस्तित्व तथा स्वायत्तता रखता है किन्तु इन दोनों के समग्र योग से जिस कला रूप और नये कला संसार का सृजन संभव होता है, वास्तव में वही नाटक होता है। रंग-बोध और रंग-संभावनाओं से लेकर रंग-परिकल्पना तक की सारी विवेचनात्मक प्रक्रिया के मूल में यही भाव स्थित है। नाटक की आत्मा रंगमंच है और रंगमंच की आत्मा नाट्य, तथा दोनों अभिनय की अपनी मूल प्रकृति से सम्बद्ध है। अत: आलेख और मंचीय प्रस्तुति का समग्र योग ही नाट्य समीक्षा का सही आधार हो सकता है।

ooo

कालिदास एवं शेक्सपीयर के नाटकों में विवाह समानता

❑ डॉ० वन्दना वागीश्वरी

साधारणत: 'विवाह' शब्द का अर्थ है कि वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना अर्थात् पत्नी बना कर ले जाना। संस्कृत में विवाह के लिए पाणिग्रहण शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'पाणिग्रहण' का अर्थ है, वधू का हाथ ग्रहण करना। हेमचन्द्र ने 'उढायाम' सूत्र से 'पाणिग्रहण' का अर्थ लिया है, जिसकी व्याख्या 'पाणिगृहीति' शब्द से ही है और लिखा है कि पाणिग्रहण के द्वारा पुरुष स्त्री का वरण करता है। विवाह सम्पन्न हो जाने पर पत्नी को 'पाणिगृहीती' कहा जाता है। संस्कार की विधि के अनुसार 'पाणिगृहीता' शब्द परिणीता स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है।[1]

विवाह वह संस्कार है जिसे धर्माचरण, संतति तथा पितर तृप्ति के लिए किया जाता है। साथ ही यह सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग जितना शुद्ध तथा संस्कारमय होगा, समाज तथा व्यक्ति को उतना ही सुख दे सकेगा क्योंकि इस पर एक ओर सम्पूर्ण वर्ण-व्यवस्था का नियमन है, वही सम्पूर्ण आश्रम-व्यवस्था का आधार भी है। धार्मिक अनुष्ठानों में निरन्तर व्यस्त व्यक्ति के लिए धार्मिक कर्म काण्डों की पूर्ति हेतु विवाह की आवश्यकता थी, साथ ही वैवाहिक बन्धन वास्तविक प्रणयगत स्नेह का परिणाम समझा जाता था।[2] अत: विवाह-संस्कार धर्म के नि:सत्व दायित्वों का वहन करता हुआ भी स्नेह संयुक्त था। यह स्नेह स्वयं दो व्यक्तियों का अपने आपको पूर्णत: मिटा देना था जो अपने अस्तित्व को एकमय कर देना चाहते थे। इसलिए महाकवि कालिदास ने 'शाकुन्तला' में दुष्यन्त की अर्हर्त एवं शकुन्तला को 'मूर्तिमती', 'सत्क्रिया' कहा है।[3] इतना ही नहीं विवाह रत्न को सुवर्ण में पिरोना है, जन्म-जन्मान्तर के लिए दो हृदयों का एकमय होना है तथा प्रकृति और पुरुष का संयोग है।[4]

शेक्सपीयर भी विवाह को पवित्र बन्धन मानते थे उन्होंने प्रेम की पूर्णता विवाह में ही मानी है तथा वे सामाजिक मर्यादा के पक्षपाती हैं। विवाह पूर्व स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को अवैध घोषित करते हुए उन्होंने उसके लिए उचित दण्ड का प्रावधान निश्चित किया है।[5]

विवाह का अर्थ :– विवाह नर-नारी का समाज कल्याण हेतु मिलन है, यह मिलन केवल शारीरिक अथवा हार्दिक नहीं अपितु दोनों का अपूर्व सम्मिश्रण है।[6] कालिदास का वर्णाश्रम व्यवस्था में विवाह दो व्यक्तियों का वासनात्मक शारीरिक मिलन नहीं, प्रत्युत धर्माचरण में सहधर्मचारिणी की आवश्यकता[7] तथा वंशवृद्धि एवं स्वर्गीय पितरों की तृप्ति के लिए संतान की उत्पत्ति के लिए है।[8]

* *169/8 पीर बाबा गली सुभाष नगर, जम्मू*

शेक्सपीयर के नाटकों के अध्ययन से विदित होता है कि पति-पत्नी का नियम से गिरजाघर में जाकर धार्मिक रीति से विवाह सम्पन्न होता था। इस अवसर पर परिवार के सदस्य एवं मित्र जन उपस्थित होते थे पादरी सर्वप्रथम वर-वधू दोनों की स्वीकृति प्राप्त करता था। यदि दोनों में से एक व्यक्ति भी विवाह के लिए अनिच्छुक हो तो विवाह अस्वीकार हो जाता था।[9] इसके पश्चात् वर-वधू को उनके कर्त्तव्य बताए जाते थे। इसके अतिरिक्त स्त्री एवं पुरुष गिरजाघर में जाकर स्वयं भी पादरी की उपस्थिति में विवाह के बंधन में बंध जाते थे।[10]

प्रेमिकाएँ भी प्रियजन को पादरी के समक्ष ले जाकर उनसे विवाह करने का वचन लेतीं थीं एवं प्रतिज्ञा करवातीं थीं ताकि उनके हृदय का संशय तथा भय समाप्त हो जाए और वह अपने प्रिय जन की जीवन संगिनी बन जाए।[11]

वर-वधू चुनाव :– वधू के सम्बंध में उसके रूप, शील, चरित्र, स्वस्थता और परिवार को देखना चाहिए।[12] अविभावक चाहते थे कि वर भी सुन्दर, गुणवान, धनसम्पन्न हो ताकि उनकी पुत्री सुख-समृद्धि से जीवन-यापन कर सके।[13] इसके साथ-साथ माता-पिता यह भी चाहते थे कि वर अनेक भाषाओं में पारंगत होने के साथ-साथ संगीत विद्या में भी निपुण हो, शेक्सपीयर ने उस वर को विवाह के अधिक योग्य माना जो विवाह के अवसर पर अधिक से-अधिक धन (दहेज) प्रदान करता था।[14] इससे यह विदित होता है कि अविभावक चाहते थे कि उनकी पुत्री अधिक-से-अधिक सम्पन्न गृह में जाए और पति की सम्पति की पूर्ण रूप से उत्तराधिकारिणी हो।

कालिदास ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि यदि अनुरूप वर न मिले तो कन्या को आजन्म पिता के पास रहना चाहिए।[13] किसी भी अवस्था में लड़की को अयोग्य वर के हाथ नहीं सौंपना चाहिए।[16] क्योंकि जब दुष्यन्त शकुन्तला के विषय में पूछते हैं कि यह आजन्म हिरणियों के साथ खेलती रहेगी या विवाह होने तक ही इसका तपस्विनी वेश रहेगा।[17] इन बातों से स्पष्ट व्यक्त होता है कि विवाह अवश्य ही हो, ऐसा कोई नियम एवं कठोर प्रतिबंध नहीं था, अन्यथा कालिदास दुष्यन्त के मुख से इस प्रकार के वाक्य नहीं कहलवाते। पिता को जब यह विदित होता था कि उनकी पुत्री विवाह के लिए युवक का चुनाव कर रही है, वह उसके लिए उपयुक्त पात्र भी है अथवा नहीं, यह जानने के लिए युवक की परीक्षा ली जाती थी। सफल होने पर पिता अपनी पुत्री को उस वर को सौंप देते थे परन्तु उसे सावधान करते हुए कहते थे जब तक वैधानिक रीति से विवाह सम्पन्न न हो जाए तब तक उनकी पुत्री का कौमार्य हरण नहीं होना चाहिए।[18]

विवाह की अवस्था

अब प्रश्न खड़ा होता है कि विवाह किस अवस्था में होता था? ऋग्वेद में स्त्रियाँ अपने पति स्वयं चुनती थीं इसका स्थान-स्थान पर संकेत है।[19] एक और बात विशेष

महत्त्वपूर्ण है कि विवाह होने के बाद चतुर्थ दिवस 'चतुर्थी कर्म' संस्कार का सभी गृह्यसूत्रों में उल्लेख है, चतुर्थी संस्कार एवं गर्भाधान संस्कार एक ही है। विवाह के पश्चात् चतुर्थ दिवस गर्भाधान संस्कार का होना स्त्रियों को युवती प्रमाणित करता है, इन सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विवाह की अवस्था कम-से-कम सोलह वर्ष की अवश्य होगी।[20]

कालिदास के समान शेक्सपीयर ने भी सभी नायिकाओं को पूर्ण युवती दिखाया है। मिरान्डा, सिल्विया, जुलिया, परडिटा, जूलियट आदि का अपनी इच्छा से वर का चुनाव करना[21], पार्वती का शिव-प्राप्ति के लिए तपस्या करना[22] प्रमाणित करता है कि उन्हें सभी बातों का ज्ञान था। शकुन्तला का स्पर्शादि के लिए रोकना तत्पश्चात् उसका गर्भवती होना कन्या की परिपक्व अवस्था का द्योतक है, शकुन्तला की सखियाँ भी सब कुछ जानती थीं, दुष्यन्त के आ जाने पर किसी बहाने से शकुन्तला को अकेला वहाँ छोड़ना, उसकी गर्भावस्था को जानना तथा पहले दुष्यन्त के सम्मुख अव्यक्त रूप से वचन लेना।[23] इसका पूर्ण युवती होना सिद्ध करता है।

उर्वशी, मालविका भी कोई छोटी बालिकाएँ नहीं हैं प्रेम-वाणों से विद्ध होना आदि उनकी परिपक्व अवस्था के ही द्योतक हैं। अत: यदि यह मान भी लिया जाए कि विवाह छोटी अवस्था में होता था तब भी चौदह वर्ष से पहले कन्या और बीस से पहले युवक का विवाह नहीं होता होगा।

शेक्सपीयर के अनुसार स्त्री का विवाह सदा उससे अवस्था में बड़े पुरुष के साथ होना चाहिए। यदि पुरुष बड़ा हो, तो तरुणी उसके अनुकूल गुरुता धारण कर लेती है। इस प्रकार स्त्री को पति-प्रेम से वंचित नहीं होना पड़ता। कितनी भी शक्ति और स्थिरता का गर्व क्यों न किया जाए, फिर भी यह सत्य है कि पुरुष की प्रकृति स्त्री की तुलना में इस विषय में अधिक चंचल और परिवर्तनशील होती है।[24] माता-पिता कम-से-कम सोलह वर्ष की युवती को विवाह के योग्य मानते हैं।[25]

शेक्सपीयर वर से वधू की अवस्था छोटी क्यों होनी चाहिए इस विषय पर कहते हैं कि विवाह के पश्चात् उसका प्रेम घटकर दूसरी दिशाओं में बहने लगता है क्योंकि नारी का रूप तो पुष्प के समान है जो देखने वालों को अपने माधुर्य से क्षणभर तो मोहित कर लेता है और फिर शीघ्र ही मुरझा जाता है।[26]

विवाह के प्रकार

विवाह के प्रकारों में कालिदास ने चार प्रकार के विवाहों का संकेत अपनी कृतियों में किया है।

स्वयंवर :- रघुवंशी राजाओं का विवाह स्वयंवर की रीति से ही हुआ था।[27] राम-सीता का और अज-इन्दुमती का विवाह इसी वर्ग में आता है।

शेक्सपीयर के नाटकों में भी युवतियाँ अपने लिए योग्य वर का चुनाव करती थीं।[28] परन्तु यदि वह विवाह माता-पिता द्वारा मान्य नहीं होता था तो विवाह के पश्चात् दम्पति माता-पिता से आशीर्वाद लेने उनके गृहस्थल पर जाते थे।[29] अनेक स्थलों में माता-पिता अन्त में युवतियों की इच्छानुसार युवक से विवाह करा देते थे।[30] पोर्शिया का विवाह स्वयंवर की श्रेणी में ही आता है उसके पिता ने यह घोषणा की थी कि जो तीन सन्दूक पेटिकाओं में से सही पेटिका का चुनाव करेगा जिसमें पोर्शिया का चित्र रखा है वही उसका जीवन साथी बनकर उसकी सम्पति का उपभोग करेगा।[31]

प्राजापत्य :- कुमारसम्भव में पार्वती का महादेव के साथ विवाह इसी रीति से हुआ था। वस्त्राभूषणों से अलंकृत पार्वती महादेव जी को पिता के द्वारा विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण सहित कन्यादान स्वरूप दे दी गई।[32]

शेक्सपीयर ने माता-पिता की अनुमति द्वारा, आभूषणों से सजी हुई कन्या से युक्त, विवाह को ही श्रेष्ठ माना है। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि जो पुत्री अपने माता-पिता की इच्छा के अनुसार विवाह नहीं करती उसे आजीवन ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए मठों में शरण लेनी चाहिए।[33] कैथरीना का विवाह प्राजापत्य विवाह के अन्तर्गत आता है।[34]

गान्धर्व :- शकुन्तला-दुष्यन्त का विवाह इसी वर्ग में आता है।[35]

शेक्सपीयर के नाटकों में मात्र एक स्थान में इस प्रकार के विवाह का वर्णन मिलता है। जूलियट एवं क्लाडियो (मेज़र फार मेज़र) विवाह पूर्व सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं उसके परिणामस्वरूप वह एक संतान को जन्म देते हैं। परन्तु स्पष्ट शब्दों में शेक्सपीयर ने इस प्रकार के सम्बंधों का विरोध करते हुए क्लाडियो के लिए प्राण-दण्ड निश्चित किया।

गान्धर्व विवाह प्रेम-विवाह था। इसमें किसी प्रकार का कोई संस्कार नहीं होता था। युवक एवं युवती स्वयं ही एकान्त में जाकर अपना विवाह निश्चित कर लेते थे।[36] माता-पिता अथवा गुरुजनों की कोई सम्मति नहीं लेता था। इस प्रकार के विवाह में काम-भावनाओं की सन्तुष्टि ही प्रधान उद्देश्य थी। बाद में भूल मालूम होने पर पश्चाताप होता था, गुरुजन भी इसे अच्छा नहीं समझते थे। कालिदास ने इस विवाह का विरोध किया है। उनका मानना है कि प्रेम जब वासना (काम) से रहित होकर शुद्ध-पवित्र हो जाता है तभी प्रेमी-प्रेमिका का मिलन सम्भव है, इसलिए उन्होंने गौतमी और शार्ङ्गरव से शकुन्तला को फटकार दिलाई है कि सोचे-समझे बिना जो कार्य किया जाता है उससे ऐसे ही दुःख मिलता है, गुप्त प्रेम बहुत

समझ-बूझ कर करना चाहिए। किसी अपरिचित के साथ बिना उसके स्वभाव आदि को समझे हुए यदि मित्रता की जाती है तो वह शत्रुता बन जाती है।[37] जब शकुन्तला एवं दुष्यन्त का प्रेम वियोग में निखर कर कुन्दन बन जाता है तो वासना का क्षणिक उन्माद शान्त हो जाता है, प्रेम वास्तविक धरातल पर आ जाता है, तब कवि उन दोनों का मिलन करवा देता है।[38]

शेक्सपीयर ने भी प्रास्पेरो से फर्डिनेण्ड के लिए कहलवाया है कि मैं तुम्हें अपनी पुत्री तो दूँगा परन्तु वैधानिक रीति से विवाह करने के पहले तुम मिराण्डा का कौमार्य हरण न करना, क्योंकि इससे भविष्य में तुम दोनों के मध्य घृणा की उत्पत्ति होगी। फर्डिनेण्ड ने विश्वास दिलाया कि वह वैवाहिक रस्म पूर्ण होने से पूर्व कोई भी अनुचित कदम नहीं उठाएगा।[39]

आसुर विवाह :- इसका संकेत कालिदास ने केवल एक ही स्थान पर किया है।[40] यद्यपि इस प्रकार के विवाह का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

शेक्सपीयर ने इस प्रकार के विवाह का वर्णन किया है। राजा हेनरी षष्ठ का विवाह मार्गरेट से होने पर उसके पिता को अंजू और मेन राज्य सुपुर्द किए थे एवं कन्या पक्ष ने दहेज में कोई भी उपहार प्रदान नहीं किया था।[41]

राक्षस विवाह :- राक्षस विवाह का भी शेक्सपीयर के नाटकों में एक स्थान पर संकेत मिलता है जब ट्राय के राजकुमार पेरिस ने स्पार्टा के राजा मेनलस की विश्वमोहिनी राजनी हेलेन का अपहरण और उसका उपभोग किया था।[42] इस विवाह के परिणामस्वरूप ट्राय के निवासियों को युद्ध में पराजय का सामना करना पड़ा।[43] यूं हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कालिदास एवं शेक्सपीयर के नाटकों में दर्शायी गई विवाह पद्धति में समानता दिखाई देती है।

सन्दर्भसूची

1. शब्दानुशासन - (II.4-51), (II.4-52)
2. रघुवंश - (V.10)
3. अभिज्ञान शाकुन्तल - (V.14)
4. रघुवंश - (VIII.15), (XI.56)
5. मेज़र फार मेज़र - (I.II)
6. कालिदास के ग्रन्थों में धर्मशास्त्रीय विषय - पृ० 73
7. (क) कुमार सम्भव - (VI.13), (VIII.29.51)
   (ख) अभिज्ञान शाकुन्तल - (V.15)
   (ग) विक्रमोर्वशीय - (V.20)
8. (क) रघु० (1.66-71)
   (ख) अभिज्ञान शाकुन्तल अध्याय (VI)
   (ग) द फेमस हिस्ट्री ऑफ दी लाइफ ऑफ किंग हेनरी एट्थ (II.IV)
9. मच एडो एबाउट नथिंग - (IV.I)
10. रोमियो जूलियट - (II.V)
11. टवेल्फथ नाइट - (IV.III)

12. स्मृति चन्द्रिका – (1.59)
13. (क) द टेमिंग ऑफ दी श्रू – (II.I), (IV.IV)
    (ख) द मेरी वाइ०स ऑफ विन्डसर – (II.II)
    (घ) ऑथेलो – (I.II)
    (ङ) ए मिड समर्स नाइट्स ड्रीम – (I.I)
14. द टेमिंग ऑफ दी श्रू – (II.I), (IV.IV)
15. कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति – पृ० 87
16. मनुस्मृति – (IX.89, 90)
17. अभिज्ञान शाकुन्तल – (1.25)
18. द टेम्पेस्ट – (IV.I)
19. ऋग्वेद – (X.17/12, X.85, 26-27)
20. कालिदास के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति – पृ० 88
21. (क) अभिज्ञान शाकुन्तल – अध्याय (III)
    (ख) द टेम्पेस्ट – (I.II)
    (ग) 'द टू जेन्टलमेन ऑफ वेरोना – (I.II), (II.III)
    (घ) विन्टर्स टेल – (IV.III)
    (ङ) रोमियो जूलियट – (II.II)
22. कुमारसम्भव – सर्ग० (V)
23. अभिज्ञान शाकुन्तल – अध्याय (III)
24. (क) रोमियो जूलियट – (II.IV)
    (ख) द मेरी वाइव्स ऑफ विन्डसर – (I.I)
26. ट्वेल्फथ नाइट – (II.IV)
27. रघुवंश – (V.39, 64, 76), (VII.13)
28. (क) रोमियो जूलियट – (II.V)
    (ख) ट्वेल्फथ नाइट – (IV-III)
    (ग) द टेम्पेस्ट – (III.I)
    (घ) ऑथेलो – (I.III)
29. द मेरी वाइव्ज ऑफ विन्डसर – (V.V)
30. द टू जेन्टलमेन ऑफ वेरोना – (V.IV)
31. द मर्चेण्ट ऑफ वेनिस – (I.II)
32. कुमारसम्भव – (VII.73, 89)
33. ए मिड्‌ समर नाइट्स ड्रीम – (I.I)
34. द टेनिंग ऑफ द श्रू – (III.II)
35. अभिज्ञान शाकुन्तल – अध्याय (III)
36. अभिज्ञान शाकुन्तल – अध्याय (V)
37. वही – अध्याय (VII)
38. वही – अध्याय (VII)
39. द टेम्पेस्ट – (IV.I)
40. रघुवंश – (XI.40)
41. द सेकेण्ड पार्ट ऑफ किंग हेनरी सिक्सथ – (I.I)
42. ट्रायलस एण्ड क्रेसिडा, अंक I सन्दर्भ (4-13)
43. वही – (V.V)

ooo

डोगरी रंग नाटकों में डोगरा संस्कृति

❑ डॉ० सुधीर महाजन

साहित्य की किसी भी विद्या में उस भाषा की संस्कृति की झलक मिलना बहुत स्वाभाविक होता है। और संस्कृति का फ़लक इतना विशाल होता है कि वह सामाजिक, राजनैतिक-ऐतिहासिक दशा, लोक-विश्वास आस्थाओं, कलाओं तथा दर्शन तक को अपने में समेट लेती है।

डोगरी भाषा में सौ के करीब रंग नाटक लिखे गये हैं तथा लगभग इतनों का अनुवाद तथा रूपातरण भी किया गया है। इन नाटकों के कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक लोक कथाओं तथा आधुनिक संदर्भों पर आधारित हैं। जिन नाटकों में लोक-कलाओं, गीतों, मूल्यों आस्थाओं तथा डुग्गर की लोक-नाट्य शैलियों को आधार बनाकर डुग्गर की लोक-संस्कृति की खोज-पड़ताल कर नाटक के स्वरूप को एक नया मुहावरा देने का प्रयास किया गया है। उनमें दीनूभाई पंत का 'संरपच' तथा 'अयोध्या', प्रो० रामनाथ शास्त्री का 'बावा जित्तो', डी०सी० प्रशान्त का 'भूपसिंह दी पड़ी', 'देवका जन्म', नरसिंह देव जम्बाल का 'अल्हड़ गोली वीर सिपाही', 'देवयानी', 'राजा मंडलीक', 'रामलीला', 'सरकार', 'भगवान परशुराम', जितेन्द्र शर्मा द्वारा 'कूंशज़ादी', मोहनसिंह का 'अपनी डफली, अपना राग', 'इक लड़ाई होर', 'बावे' तथा दीपक कुमार का नाटक 'लेखा बेही दा' तथा डॉ० ज्ञान सिंह का 'बावा सुरगल एवं बाबा जित्तमल' प्रमुख हैं।

दीनूभाई पन्त द्वारा रचित नाटक 'सरपंच' की कथा का आधार डुग्गर की एक लोक-गाथा है जिसका नायक दात्ता रणपत्त है, जो अपनी ईमानदारी, सच्चाई तथा इन्साफ पसन्दी के लिए जाना जाता है। इस नाटक में डोगरी में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गायी जाने वाली कारकों को नाटक की कथा के साथ जोड़ा गया है तथा दात्ता रणपत्त को एक लोक नायक के रूप में प्रस्तुत कर गांव के सारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिवेश को चित्रित किया है। 'अयोध्या' नाटक में जो कि रामायण की कथा पर अधारित है उसमें ककेई को नये दृष्टिकोण से देखा है। उसे वर्तमान संदर्भ में राष्ट्र का हित्त चाहने वाली, अपने अधिकारों के लिए अपना सर्वस्व त्यागने वाली, एक वीरांगणा के रूप में दर्शाया गया है। प्रो० रामनाथ शास्त्री द्वारा लिखित नाटक 'बावा जित्तो' में सरपंच की तरह बावा जित्तो को अपने हक और अधिकारों के लिए बलिदानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में डोगरी लोकगीत, संगीत तथा नृत्य का बहुत ही सुन्दर संयोजन किया गया है। डी.सी. प्रशान्त द्वारा रचित नाटक 'भूपसिंह दी पड़ी' में भूपसिंह को एक डोगरा वीर सैनिक के रूप में तथा देवका जन्म में शुद्धमहादेव तथा गुप्त गंगा के उद्भव के बारे

में बताया गया है। नरसिंह देव जम्वाल का नाटक 'अल्हड़ गोली, वीर सिपाही' एक लोकगीत पर आधारित है यह दो प्रेमियों 'कुंजु तथा चैंचलों' की प्रेम कहानी पर आधारित है। 'देवयानी' नाटक में देवयानी कच तथा ययाति के प्रेम तथा विवाह की पौराणिक कथा को आधार बनाया गया है तथा इसमें डोगरा अनुष्ठान, गीत एवं संगीत का प्रयोग हुआ है। राजा मंडलीक नाटक भी राजा मंडलीक की बार पर आधारित है जो डुग्गर के तत्कालिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को दर्शाता है। राम लीला में नाटककार ने पूरी रामायण के लगभग एक सौ पैंसठ दृश्य बनाएं हैं तथा इसे डोगरी में अनुवाद कर पूरे सात नाटक तैयार किए हैं। शायद किसी भी भाषा में ऐसा न होकर यह डोगरी का पहला प्रयास होगा। 'सरकार' नाटक में महाराज रणवीर सिंह को एक आदर्श, दार्शिनिक तथा कुशल राजनीतिक राजा के रूप में प्रस्तुत किया है। 'भगवान परशुराम' नाटक में परशुराम अवतार को एक नये दृष्टिकोण से देखा कि उनका अवतार सभी क्षत्रियों का विनाश करना नहीं बल्कि जो मूल्य तथा धर्म से हट गये थे उन्हें खत्म करना था। जितेन्द्र शर्मा द्वारा रचित नाटक 'कूंशजादी' डोगरी की एक लोक कथा कूंशजादी पर आधारित है, जिसमें पूरा डोगरा सांस्कृतिक परिवेश झलकता है। मोहनसिंह द्वारा रचित 'अपनी डफली, अपना राग', 'इक लड़ाई होर' तथा 'बावे' डुग्गर की लोक-नाट्य शैली भगतां, हरण तथा जागरण पर आधारित हैं।

दीपक कुमार का नाटक 'लेखा बेही दा' जो मूल नरेन्द्र खजूरिया की कहानी पर आधारित है इस नाटक को भी डुग्गर की लोक-नाट्य शैली भगतां का स्वरूप दिया गया है। इसके अतिरिक्त डॉ ज्ञान सिंह के दो नाटक 'बावा सुरगल' तथा 'बावा जित्तमल' लोकगीत शैली कारक पर आधारित हैं तथा बावा जित्तमल काव्य (छन्द मुक्त) में लिखा गया है।

उपर्युक्त डोगरी रंग नाटकों में डुग्गर की संस्कृति की एक अच्छी खासी झलक हमें मिलती है परन्तु जैसे लोक-नाट्य कलाओं भगतां, हरण, जागरण तथा जात पर बहुत कम नाटक मिलते हैं लगभग वैसी ही हालत इन मूल नाट्य परम्पराओं की भी हो गयी है। यह नाट्य-विधाएं जो धार्मिक-ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयों को अपनी कथाओं में आधार बनाकर पेश की जाती थी, अब सिर्फ सुनने मात्र तक ही रह गयी हैं और इनमें काम करने वाले मजें हुए कलाकार भी अपना यह पेशा छोड़कर कुछ दूसरे व्यवसाय अपना रहे हैं। क्योंकि इन कलाओं से सम्बन्धित विभाग तथा रेडियो, टी०वी० आदि इन नाट्य परम्पराओं को जीवित रखने में कोई बहुत बड़ी सार्थक भूमिका नहीं निभा रहे जबकि राज्य में हर वर्ष आधुनिक नाटकों के तो नाट्य समारोह पिछले पचास सालों से हर वर्ष आयोजित किए जाते हैं। पर हर वर्ष लोक-नाट्य समारोह नहीं किए जाते। अगर ऐसी ही स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं जब यह नाट्य परम्पराएं बिल्कुल लुप्व हो जाएंगी और परम्पराओं का लुप्त होना सांस्कृतिक विरासत का लुप्त होना है।

० ० ०

सुलगती घाटी से सिसकती आवाज़

❑ डॉ० रूबी जुत्शी

कश्मीर घाटी में लेखन के लिए वातावरण प्रतिकूल होने के उपरान्त भी कुछ ऐसे व्यक्ति अपने विचारों को समाज तक पहुँचाने का साहस रखते हैं। उनमें से एक श्री निदा नवाज़ हैं। यह अपने व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए 'हिन्दी काव्य' लिखने में सफल हुए हैं।

कवि का जन्म 3 फरवरी सन् 1963 में कोयिल पुलवामा में हुआ है। इनकी आरम्भिक शिक्षा अपने ही गाँव के स्कूल में हुई है। इन्होंने अमरसिंह कालेज से बी० ए० करके, एम० ए० एज्युकेशन, उर्दू एवं बी० एड० कश्मीर विश्वविद्यालय और हिन्दी ऑनर्स, एम० ए० हिन्दी पटना विश्वविद्यालय से किया है।

आज एक अध्यापक होने के साथ-साथ आप कश्मीर हिन्दी लेखक संघ के सचिव, ज़िला लेखक संघ, पुलवामा के अध्यक्ष, मराज़ कल्चर्ल फोर्म कश्मीर के सदस्य कार्यरत हैं।

इन्होंने पहली कविता 'सागर लहरें' सन् 1983 में लिखी है किन्तु अप्रकाशित होने के कारण इसी कविता का शीर्षक बदला कर 'दिल की लहरें' नामक कविता से इनके प्रथम कविता संग्रह में प्रकाशित हुई है। इनकी पहली प्रकाशित कविता 'जीवन झाँकता है' सन् 1991 में पत्रिका 'उद्‌भावना' यू. पी. में प्रकाशित हुई है। कविताओं के साथ-साथ यह कहानियां लिखने में भी रुचि रखते हैं। इनकी पहली कहानी 'बटवारा' सन् 1992 में पत्रिका 'योजना' जम्मू में प्रकाशित हुई है।

कविताओं का संकलन 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा' सन् 1997 में प्रकाशित हुआ है। यह एक प्रतीकात्मक शीर्षक है। इस संग्रह में संकलित कविताओं के कई शब्द रक्त से ओत-प्रोत हैं। इस. संग्रह के अतिरिक्त इन्होंने कम-से-कम तीस कविताऐं और भी लिखी हैं किन्तु संकलन के रूप में न आकर विभिन्न पत्रिकाओं (उद्‌भावना यू० पी०, जनमत-नई दिल्ली, आजकल-दिल्ली सूचना, शीराज़ा-जम्मू, उत्तरार्ध-मथुरा, वितस्ता-हिन्दी-विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय में प्रकाशित हुई हैं या हो रही हैं।

पटना के निवासी मोहम्मद अशरफ अली इनके प्रेरक रहे हैं और प्रो० रामनाथ शास्त्री ओम प्रकाश गुप्त, डॉ० उषा व्यास एवं सतीश विमल आदि ने इनको पग-पग पर प्रोत्साहित किया है।

---

* *मनोज पंडित, डी. एस. पी. मीडिया सेंटर पी. सी. आर. श्रीनगर*

कवि को कई पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया गया है। सन् 1998 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से 'हिन्दीतर भाषी हिन्दी राष्ट्रीय पुरस्कार' मिला है। जो डॉ० मुरली मनोहर जोशी जी ने प्रदान किया। दूसरा पुरस्कार अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति 'मथुरा' द्वारा मिला है। इस पुरस्कार का नाम 'मैथलीशरण गुप्त' सम्मान है। सन् 2005 में हिन्दी दिवस पर साहित्य सम्मेलन (जम्मू) के द्वारा 'साहित्य-प्रभाकर' के पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। इनके अतिरिक्त भी इनको कई पुरस्कार मिले हैं।

इन्होंने आतंकवाद, विस्थापन, धर्मनेताओं, राजनेताओं, शोषण-शोषक, आधुनिक तकनीकी एवं रिश्ते के बांझरूप आदि सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है। किन्तु इनकी लेखन कला में महत्त्वपूर्ण बात यह पाई जाती है कि यह पाठक पर समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का भार नहीं छोड़ते हैं, बल्कि स्वयं इनका हल निकालते हैं। यह वादों एवं गुटों की निंदा करते हैं किन्तु साम्यवाद से जुड़े हैं। निदा क्रान्ति मारदाड़ एवं हथियारों से नहीं बल्कि वैचारिक रूप से पूरे विश्व में क्रान्ति लाने की इच्छा रखते हैं। मानव के मन और मस्तिष्क में बदलाव लाकर समाज में परिवर्तन लाने के इच्छुक हैं। कवि के लिए धर्म से भी ज़्यादा श्रेष्ठ मानवता है इन्होंने अपनी कविताओं में एक धर्म रहित विश्व की कल्पना की है। जहां के लोगों की रीढ़ की हड्डियाँ झुक-झुक कर टेड़ी नहीं हुई हों और जहां के लोग शक्तिशाली और धनी लोगों के दबाव के सामने अपने आत्मसम्मान को न बेचते हों। उदाहरण के लिए :-

नहीं तराशा होगा कोई ईश्वर
नहीं जानते होंगे लोग झुकना[1]

नवाज़ साहब ने जहां ईश्वर रहित संसार की कल्पना की है। वहीं इनका दूसरा रूप भी हमें देखने को मिलता है क्योंकि इनका कहना है :-

हर एक जगह तुम ही तुम हो
जिधर भी देखूँ
जहाँ भी देखूँ
तेरे ही दर्शन मैं पाऊँ।[2]

कवि ने किसी विशेष क्षेत्र के आतंकवाद को न छूकर समस्त विश्व के आतंकवाद पर अपनी लेखनी चलाई है। इस समस्या से पीड़ित किसी भी प्रदेश के अधखिले फूल अपने विकसित होने की इच्छा को दफ़न करके अपने पालनहार को बचाने के प्रयत्न में लगे हैं, जैसे :-

जो रात को दरवाज़े पर दस्तक
पाते ही चौंक जाते हैं और छिपा लेना चाहते
हैं, मुझे अपनी नन्हीं पीठ के पर्दे की ओट में[3]

इन पंक्तियों से पाठक को यह आभास होता है कि कवि उपरोक्त समस्या से स्वयं

भी पीड़ित है। वर्तमान परिस्थितियों से इतना टूट चुका है कि वह विनाश के बदले पूरे संसार में शान्ति और मानवता की वर्षा करना चाहता है :-

आओ
मारा-मारी अब बन्द करें हम
संकीर्णता से न डरें हम।
शान्ति की चादर बिछाएँ
और यह प्रतिष्ठित करें
कि सारी मानवता की सफलता
केवल शान्ति में है।[4]

कवि को लगता है कि समसामयिक युग में 'मानवता' शब्द अर्थवान न होकर अर्थहीन हो गया है क्योंकि कुछ वर्षों से 'मानवता' दम तोड़ रही है। केवल इस शब्द का खोखला रूप ही हमारी आँखों के सामने घूमता है :-

चार अक्षरों का
एक खोखला शब्द
जिसे कहते हैं
'मानवता'[5]

आतंकवाद के साथ ही विस्थापन जैसी बड़ी समस्या भी जुड़ी हुई है। इस उभरती समस्या के साथ कई समस्याओं ने जन्म लिया। जिससे हमारा समाज और दूषित हो रहा है। कवि समसामयिक वातावरण से ऊब चुका है। वह शान्त और सुलझे समाज की आशा रखता है। जहां के बच्चों से अपनी धरती न छिन जाए और न ही कुछ पैसों एवं आजीविका चलाने के लिए काल्पनिक नाम बढ़ाए या घटाए जाएं, उदाहरण के लिए :-

अपने सूखे खेतों को खुला छोड़ने पर मजबूर हैं
दूसरे के चरने के लिए
केवल एक रजिस्ट्रेशन कार्ड बनवाने के लिए
और उसमें एक
काल्पनिक पितृ नाम भरने के लिए।[6]

कवि रोमांटिक क्षणों को भी भोगना चाहता है। कुछ क्षणों के लिए रोमानी होकर इन्होंने कई कविताऐं लिखीं हैं। कवि की प्रेमिका जो किसी कारणवश बिछड़ गई है। उसी को याद करते हुए अतीत में खो कर कवि को मिलन का आभास होता है, जैसे

मैं उनके इन्द्रजाल में
खो जाता हूँ

धीरे-धीरे तुम्हारा
पूजा की रूपहली थाली-जैसा
चेहरा उभरता है।
और माथे का तिलक
जैसे आरती का दीया
तुम अपना हाथ
मेरे हाथ पर रखती हो।[7]

विश्व में आतंकवाद से वातावरण जितना आतंकित हुआ है उतना ही मानव अधिकारों का हनन तथा आवश्यकता से अधिक सुरक्षा प्रबन्धों ने लोगों के आँगनों में बंकर लगा कर वातावरण को और भी डरावना बना दिया है। जिसके कारक इनके जीवन के सारे सुन्दर सपने टूट कर बिखर गये हैं और आम आदमी का जीना भी दूभर हो गया है। उदाहरण के लिए :-

डर और पीड़ा
हमारे अंतरमन में समा गई।
और हमारे सपनों के आँगन में भी
बंकर-बस्तियां बनने लगी।[8]

ऐसी बंकर-बस्तियों में लोगों के सुन्दर सपने ही नहीं उनका भविष्य और वर्तमान भी मर जाता है। जनता का देखना और सोचना अवरूद्ध होता है। ऐसी बंकर-बस्तियों से प्रेम के पुजारी एवं प्रगतिवादी लोग फौ फटने से पहले ही अपने घरों को छोड़कर भागना चाहते हैं। कवि भी इस समस्या से पीड़ित है, इसलिए इस व्यथा को अपने शब्दों में व्यक्त किया है :-

''जिससे प्यार हो
उसके साथ निकल जाना चाहिए''
सूर्योदय से पहले
बंकर-बस्ती से दूर
बहुत दूर[9]

मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण कवि ने विश्व में एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की है। जहाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था न हो, जहाँ विश्वास हो क्योंकि जब विश्वास होता है तो बन्दिशें समाप्त हो जाती हैं :-

जहाँ तिजोरियां नहीं होती
वहां नहीं होती भूख
जहां ताले नहीं होते
वहां नहीं होते चोर[10]

शोषक और शोषण जैसी समस्या हमारे समाज में अभी भी व्याप्त है क्योंकि आम लोगों की यही धारणा है कि अमीरी और गरीबी किसी मानव के हाथ में नहीं बल्कि दाता की देन है। जबकि सच भी यही है और कवि के अनुसार भी अमीरी गरीबों के पसीने से चलती है। उदाहरण के लिए :-

उनका खून, उनका पसीना
एक प्रश्न बनकर
उभर आया
उस सीमेंट और लोहे पर
और उस प्रश्न को
वे रेशमी आकाशी रंग के पर्दे भी
रोक नहीं सकते।
वे ऊपरी मंजिल पर लटकी
नीले रंग की तख्ती भी नहीं
जिस पर बड़े शब्दों में लिखा हैं
''हाज़ा-मिन-फज़ले-रुब्बी।''[11]

प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए भी कवि की आँखों में वेदना उमड़ पड़ती है, जो आँसू का रूप धारण कर लेती है, उदाहरण के लिए :-

झील के इस तट पर
लहरों के विस्तार को देखूँ
नैया और मंझधार को देखूं
रोता जाऊँ
नीर ब्हाऊँ
मेरा अंग-अंग लोचन बनकर
रोता जाये
इतने आँसू बहाये।[12]

कवि मन में ऐसे समाज की भी कामना करता है, जहाँ केवल इच्छाएं कूट-कूट कर भरी हों और भावनाओं के फूल हों, तर्क-वितर्क का वातावरण हो। जहाँ लोगों की समस्त इच्छाओं को सम्पूर्ण किया जाए और छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जाए जो रचनात्मक हो। नए-नए आचारों और विचारों को प्रोत्साहन करने वाली हों तथा तकनीकी तौर पर भी लाभदायक हों, जैसे :-

भारी बस्तों के बोझ से घिसी
अपनी नन्हीं पीठ का नन्हा-सा दर्द
उस कंकाल पर अजमायेगा

जिस पर युगों से केवल
प्रयोग ही किए जा रहे हैं
मेरे सपने से उभर आएगा मांस
और उसमें दौड़ेगा जीवन[13]

कवि की कविता से पाठक को लगता है कि कवि बहुत बार अपनी ज़िन्दगी में निराश हो चुका है, क्योंकि उन्होंने निराशावादी स्वर में भी कई कविताएं लिखीं हैं। 'जीवन झाँकता है' कविता में जीवन का कटु यथार्थ सामने लाया है, उदाहरण के लिए

जीवन बुझे हुए
चेहरे की पॉवडर-तले छुपी
हर उस झुर्री में से झाँकता है
................[14]

इसके अतिरिक्त जीवन में कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर नहीं मिल पाते हैं। तब हम यह कहने पर विवश होते हैं कि सदियों से यह परम्परा चली आई है तो हम जैसे लोग कैसे तोड़ या जोड़ सकते हैं। इसी भ्रम में कवि भी घूम रहा है :-

हर कदम पर एक प्रश्न है
और हर मोड़ पर एक शंका
उभरती है....[15]

यह कविता संग्रह मुख्यत: आशा और निराशा को दर्शाता है यद्यपि निराशावादी कविताओं की संख्या आशावादी कविताओं की अपेक्षा बहुत अधिक है। जैसे आदर्श, लौ के सहारे, जीवन झाँकता, मेरी नाम की पुस्तक, अग्निकुण्ड, जाने कौन आस-पास होता है, भीगी आँखें, पलकों की टहनियाँ और काँटों का उपहार आदि कविताएं निराशावादी स्वर में लिखीं गई हैं किन्तु किसी-किसी कविता में आशावादी स्वर भी गूँजता है उदाहरण के लिए 'उपहार' और 'सपनों की धरा' आदि।

कवि विश्व की सारी खटास को समाप्त करना चाहता है। वह पूरी खटास को अपने उस घाव पर मलना चाहता है उदाहरण के लिए :-

समुंद्र को दूंगा
बदले में मांगूगा उसका सारा नमक
जिसको छिड़का सकूं एकान्त में
अपने उस ताजे से घाव पर
जिसमें फड़फड़ा रही है।
नई कविता कान्ति नाम की... [16]

यह पूरा संग्रह आतंकवाद एवं आतंकवाद के दुष्परिणामों का लेखा-जोखा है। इसकी कई कविताऐं बहुत अच्छी हैं, उदाहरण के लिए :- दो शब्द, चेतना-सरोवर के तट पर, मेरी बस्ती में, वितस्ता साक्षी रहना, अपंग सोच, कंटीली झाड़ियाँ, निष्फल-उपासना, पायल की झंकार भी दूंगी (विरहगीत), मैं तो घास हूँ उग जाऊँगा, काटों का उपहार, हमारी अम्मा की ओढ़नी आदि। जो कविताऐं रह जाती है वह इस स्तर की नहीं हैं। कुछ कविताओं के शीर्षक भी अटपटे से है। 'बाँझ धरती, अक्षर-अक्षर रक्त भरा' आदि कविताओं से पाठक गहरी सोच में पड़ता है कि कवि वास्तव में समाज के समाने क्या रखना चाहता है, क्योंकि कविताओं में शब्द एक अर्थ नहीं देते हैं, बल्कि अर्थ की विभिन्न संभावनाओं को सामने लाते हैं। अब यह पाठक पर निर्भर करता है कि वह इन शब्दों को किन अर्थों में लेता है।

इनकी लेखनी में एक बहाव मिलता है, जो पहली पंक्ति से अन्तिम पंक्ति तक पाठक को अपने साथ बहा ले जाता है। इन्होंने कलिष्ट हिन्दी का प्रयोग न करके हिन्दोस्तानी भाषा का प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी शब्दों को भी इस तरह अपनाया है लगता है, वह अंग्रेजी के न होकर हिन्दी के अपने ही हैं जैसे-सर्चिगं टार्च, रिफ्यूजी कैम्पों, रजिस्ट्रेशन कार्ड, एकवेरियम आदि। कुछ शब्द इनके प्रिय भी रहे हैं जैसे मानवता, कंकाल, शान्ति, नमक, मैं, समुंद्र, कंटीली झाड़ियां, रिसते, पिंजरे, स्वप्न आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग किया है। इन्होंने कटु यथार्थ की बात की है। जो झेला उसी को शब्दों का श्रृंगार करके रसपूर्ण व्यक्त किया।

अतीत पद्धति, अधूरी शैली, मैं शैली, उपमा एवं मानवीकरण, अलंकारों, प्रतीकों, बिम्बों एवं सांकेतिकता का सार्थक प्रयोग किया है। जो इनके काव्य शिल्प की प्रमुख विशेषता है। वितस्ता, डल झील, लल्लेश्वरी के शैवदर्शन, नुन्द ऋषि के ऋषि दर्शन आदि शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि कवि अपनी संस्कृति से विमुख नहीं है, किन्तु कुछ पंक्तियां स्थापित धार्मिक मूल्यों पर चोट करती है, जैसे- **'नहीं तराशा गया होगा कोई ईश्वर'** जिन विषयों को इन्होंने आधार बनाया है उन विषयों पर लेखक बहुत कुछ लिख रहे हैं और लिखा भी है किन्तु जिस घाटी के निदा निवासी हैं। वह घाटी इन समस्याओं से जूझ रही है, तो ऐसे भयानक वातावरण में उसी समस्या पर लिखना कवि की महानता है। जिसको कोई भी आलोचक नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सकता है। इनके साहस की दाद देनी चाहिए।

समविषय इस काव्यसंग्रह की विशेषता भी है और अभिशाप भी, किन्तु गुण ज़्यादा है और अभिशाप कम क्योंकि घाटी इसी प्रवृत्ति की शिकार है। विडम्बना यह है जिन लोगों को इस से ज्ञान मिलता है वह इस भाषा को बहुत कम जानते हैं।

कविताओं की जो पुष्पमाला कवि ने पिरोई है। उसके कुछ पुष्प महकते हैं और कुछ चहकते हैं। कुछ महकते हैं किन्तु चहकते नहीं और कुछ न चहकते हैं और न महकते हैं। फिर भी यह कविताऐं किसी 'पुष्पमाला' से कम नहीं हैं।

कश्मीरी युवा कवि की हिन्दी कविता कश्मीर से बाहर की हिन्दी कविता की विचारधारा एवं कविता स्तर का साथ दे रही है, इसलिए कवि के कार्य की सराहना की जानी चाहिए और आशा है कि भविष्य में भी निदा साहब की कलम से यह वितस्ता बहती रहेगी।

सन्दर्भ संकेत

1. मैं पालूंगा एक सपना कविता : वितस्ता 2005 पृष्ठ : 84
2. सर्वव्यापी : अक्षर-अक्षर रक्त भरा : पृष्ठ न० 84
3. अक्षर : अक्षर रक्त भरा : पृष्ठ : 3
4. सीमा हो तो नील गगन की : पृष्ठ 38
5. वह तो चली गई : पृष्ठ : 47
6. मैं पालूंगा एक सपना : पृष्ठ: 86
7. कल्पना की दहलीज़ पर : पृष्ठ : 22, 23
8. दो शब्द : पृष्ठ : 12, 13
9. जिससे प्यार हो : पृष्ठ : 62
10. मैं पालूंगा एक सपना : पृष्ठ : 84
11. मेरी बस्ती में : पृष्ठ : 19
12. दिल की लहरें : पृष्ठ : 70
13. मैं पालूंगा एक सपना : 85
14. जीवन झाँकता है : 24
15. हर समय एक प्रश्न : 30
16. मैं पालूगां एक सपना : 86

ooo

भाषांतर डोगरी कहानी

भ्रम जाल

❑ मूल. ओ. पी. शर्मा 'सारथी'
अनु. कपिल अनिरुद्ध

उस बालक ने खुरचनी को सम्भाल कर कड़ाही में ज़ोर से हाथ मारा। दूर तक कड़ाही में ठाक चमकीली पट्टी बन गई। साथ ही उस ने मुस्कुराते हुए मुझे कहा–बाबू–दूध पी ले।

तेरी आवाज़ सुनाई नहीं देती।

मैं उस के निकट बैठ गया और उस की बात का उत्तर दिया। अरे बच्चे, मैं तुम्हें सच कह रहा हूँ। तू शाम को मलाई बगैरा बेच कर नाटक-मण्डली में चले आना। तुम्हें कुछ न कुछ बना दूँगा। पीछे खड़े मेरे अस्सिटैंट चौधरी ने मेरी चमचागिरी की सर, इस जानवर को क्यों कर बुला रहे हो। क्या इस नगर में अभिनेताओं का अभाव है। मैं दर्जनों लड़के ले आऊँगा। आप चुनाव कर लेना। मैंने चौधरी की पगड़ी की ओर देखा। उस ने पगड़ी को सीधा किया। चौधरी गाय को गाय के स्थान पर प्रस्तुत करना बड़ा सरल है। गधे को घोड़े के स्थान पर खड़ा कर के लोगों को बताओ तो कमाल है। यह बालक तुम्हारे कथनानुसार जानवर है। मेरे विश्वास में यह राम है। अब देखना यह है कि तुम जीतते हो अथवा मैं। सुन कर चौधरी ने दोनों कान पकड़ लिए सर मैं न तो चुनौती दे रहा हूँ, न ही नकार रहा हूँ। सोच रहा हूँ यह बालक आप को दुःख देगा। मुझ से आप का दुःख देखा नहीं जाएगा। इसे वानर सेना में भर्ती किया जा सकता है पर आप कह रहे हैं यह राम है। हाँ, चौधरी इस बार राम यही होगा। बस इसे नाट्यशाला में ले आओ।

–मैंने बालक को पुनः कहा, "अरे सोमू। शाम को नाटक-मंडली में चले आना। यह चौधरी साहब तुम्हें लेने आयेंगे।"

–रिहर्सल चल रही थी और चौधरी सोमू को लेकर आ पहुँचा। नाट्यशाला देख कर सोमू आवाक्-सा रह गया। चौधरी ने मेरे कान में कहा–"सर, उस राम को ले आया हूँ। परन्तु रास्ते में कह रहा था मुझे महसूस होता है ऐनक बाला बाबू मेरा बिस्तर छीन लेगा। यह आप को ठग समझ रहा है। आप इसे राम समझ रहे हो। क्या कन्ट्रास्ट है। क्या फ्रेम है।"

–रिहर्सल से समय निकाल मैं सोमू के पास गया और उसे कहा–

–"सोमू-रामलीला में काम करोगे। "पूछने पर उस ने अपनी नथने फुलाए-"हाँ करना है।" मैंने कहा–"काम तो तुम से करवायेंगे पर मैं तुम्हें नथनें नहीं फुलाने दूँगा।" सोमू तत्क्षण

---

* *309 कर्नल कालोनी, बोहड़ी तालाब-तिल्लो जम्मू*

लज्जित-सा हो गया। इसी बीच दो-तीन लोग मेरे पास आये। उनके व्यवहार से सोमू कुछ नर्म दिखने लगा। वह विनम्र हो गया। बोला "साहब मैं आप को कोई ठग समझ रहा था। पर आप तो सचमुच ही लीला करवाने वाले हो। मैं ज़रूर करूँगा। मुझे बड़ा शौक है। मैं सातवीं तक पढ़ा भी हूँ। पत्र में सब कुछ लिख लेता हूँ।" मैंने सोमू को कहा-"सोमू मैंने तुम्हें बुलाया ही इसीलिये है कि तुम्हें स्टेज पर चढ़ाना है। पर तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी। मैं जैसे कहूँ तुम्हें वैसा ही करना होगा।" सोमू ने मुझे वैसा ही करने का वचन दिया।

मैंने सोनू को बुला मुसीबत मौल ले ली। क्लब के जिस-जिस कलाकार को पता लगा कि सोमू को सर एक्टर बनाने लगे हैं, वो हैरान हुआ। मेरे निकट आ कर इस बात को कन्फर्म करवाने लगा। मैं सब को सहज स्वभाव से कह देता कि सोमू लीला में काम करेगा।

एक दिन मैंने चौधरी तथा दो-तीन को सुनाया कि मैं सोमू को राम का पार्ट देने लगा हूँ, तो मेरे भय को तिलांजलि दे कुछ आदमी इतने हंसे मानो उन्हें कोई दौरा पड़ गया हो। मेरी बात को बड़े ही नाटकीय अन्दाज़ से लिया जा रहा था। मैंने चौधरी को बुला कर कहा- "चौधरी जी, यह बालक आप के संरक्षण में है। यह लो इस का स्क्रिप्ट। यह आप ने इसे याद भी करवाना है और सोमू से सब को तू-तू कहना भी छुड़वाना है। बोलचाल में यह बहुत असभ्य है।" चौधरी ने अनमनेपन स्क्रिप्ट ले लिया। कुछ कहे बिना चला गया। दो-चार दिन चौधरी सोमू को याद करवाता रहा। अन्तत: वह उसे मेरे पास ले आया और कहने लगा-"देखो अपने रामचन्द्र जी को।" मैंने पूछा "क्या हुआ? क्या देखूँ?" तो चौधरी ने सोमू को कहा-चल वे। सर को सुना। जो कुछ तूने याद किया है। "सोमू ने कोने से धनुष उठाया और कंधे पर रखा तथा बोला- "शिव धनुष तोड़ने वाला भी कोई शिव प्यारा ही होगा। जिस से भी यह अपराध हुआ वो दास तुम्हारा ही होगा।" बाकी तो सब ठीक था। एक तो सोमू व के स्थान पर ब बोल रहा था, दूसरे बड़े जोश के साथ कह रहा था, मानो भट्ठी जलाने के लिए पेटियाँ तोड़ रहा हो। मैंने सोचा यह दोनों बातें तो सही जा सकती हैं परन्तु वह संवाद बोलते हुए दायें हाथ को इस तरह घुमा रहा था जैसे वह कड़ाही साफ़ करने के लिये खुरचनी घुमाता था। मैंने उसे कहा-"यह हाथ जिस के साथ तू हाथ के फिसलने का संकेत करता है, यह तू धनुष की ओर ले जाया कर। साथ ही जहाँ भी शिव या वाला शब्द आये वह ठीक बोला कर।" "सर जी-यह आदत पड़ गई है, पर हटा लूँगा। आप तो परमेश्वर से भी बढ़ कर हो। मुझे राम बना दिया। सच मानो कई बार धनुष कंधे पर रख लूँ तो कन्धा हिलाने को मन नहीं मानता। जी चाहता है, राम जी बना ही रहूँ।"

मैंने सोमू को समझाया-"यह नाटक है लीला है। इस में सच कुछ नहीं। तुम्हें राम का पार्ट करना है, अभिनय के उपरान्त तुम राम नहीं।"

रिहर्सल चल रही थी। मैं सोमू को राम का पार्ट याद करवा रहा था। वह पूरे मनोयोग से अभिनय सीख रहा था। इतना भी था कि एक-आध बार बात समझाने पर वह समझ जाता था पर खूबी यह थी कि वह संवाद कमाल का याद करता था। जो बोल दिया वह याद हो गया।

सोमू को कार्य अधिक करना पड़ता था। दुकान तो उसके ही आसरे थी। शाह ने सुनाया था कि वह सोमू को आठ वर्ष की आयु में लाया था। अब तो यह दुकान उसी के सहारे चल रही थी।

मैंने बहुत बार देखा कि पुराने अभिनेता सोमू के साथ बहुत मसखरियाँ करते। चुगलियाँ करते, बातों से उसे आहत करते पर सोमू कुछ नहीं बोलता। मैंने एक दिन सोमू को कहा– ''सोमू तुम्हें कौन छेड़ता है, मुझे बताया कर। मैं उसकी खबर लूँगा।'' सुन कर सोमू ने ज़ोर से गर्दन 'ना' में हिलाई–''नेईं सर, कोई कुछ नहीं कहता। यदि कहता है तो कहने दो। यदि कोई झगड़ा हुआ तो आप मुझे राम नहीं बनने देंगे। मुझे राम ज़रूर-बा-जरूर बनना है।''

सोमू के साथ अन्य कलाकारों का स्वभाव कुछ घुलमिल गया। परन्तु उसे एक क्लेश रह ही गया। सीता का।

जिस बालक ने सीता का अभिनय करना था उसे राम के सामने आते ही हंसी आ जाती थी। पहले-पहल मैंने भी इस बात को बड़ी सहजता से लिया पर जब फाईनल रिहर्सलों में भी सीता का अभिनय करने वाले की हंसी न थमी तो मैंने ज़रा-सी सख्ती से उसे पूछा– ''वे खाकू। मुझे समझ में नहीं आता। तेरे साथ क्या करूं। सोमू को देख कर तुम्हें दौरा क्यों पड़ जाता है। यदि तूने लीला वाले दिन भी यही सब करना है तो पहले बता दे।'' खाकू कुछ गम्भीर हुआ और बोला–''सर मैं पिछले दस वर्षों से सीता का अभिनय करता आ रहा हूँ। सोचता हूँ यह मलाई बेचने वाला मेरे सामने कैसे टिकेगा। क्या करेगा।''

खाकू के भीतर अभिमान बोल रहा था। पर मेरा मानना था अधिक समझाना ठीक नहीं। कई बार हुआ था कि जब मैं किसी को समझाता था वह पेट-दर्द का बहाना कर लेट जाता था। और फिर पेट-दर्द का ईलाज, मिन्नतें, खुशामदें, चापलूसियाँ होता था। कितने ही कारीगर, अभिनेता भाग गए थे। खाकू भी उन्हीं में से एक दिखाई देता था।

वास्तव में यह लीला का धन्धा बड़े चस्के का है। जिस को इस की लत लग जाती है। वह किसी भी हालत में अभिनय कर ही लेता है। डांट-डपट कर भी और मिन्नतें-खुशामदें कर के भी। वो इस नाटक जगत को बनाये रखने के लिए क्या कुछ नहीं करता। गालियाँ खाता जा रहा है। अपना जुलूस निकलवाता जा रहा है। जो इस का स्तुति गान करता है उसे ओर अधिक भूखा-नंगा तथा लाचार करता जा रहा है। जो इस की आलोचना करता है, धौंस जमाता है, रौब डालता है, जो इसे मानता ही नहीं, उसे बढ़िया-से-बढ़िया भूमिका देता जा रहा है। अनपढ़ को राजा बना रहा है। पढ़े-लिखे को भिखारी का रोल भी मुश्किल से दे रहा है। निंदा करवा रहा है पर चस्का! चस्का लीला का। नाटक का अमल नहीं छूटता।

मुझे अपने-आप पर हंसी आती है। कोई बरतन साफ़ कर रहा हो, किसी उद्योग का कोई स्वामी हो। देखता हूँ जुबान ठीक है, कद-बुत, नाज़-नख़रा ठीक है, बस मिन्नतें-खुशामदें करके ले ही आता हूँ। भला कोई पूछे यदि यह अस्तबल न भरा जाये तो हर्ज़ भी क्या है।

जानवर लाने और इन्सान बनाने। उन्हें स्टेज़ पर चढ़ाना। चाहे उन की एड़ियाँ पकड़ कर क्यों ना रखनी पड़ें या बैसाखियाँ थाम कर खड़ा रखना पड़े पर लीला ज़रूर करवानी। सब से रूठना, फिर स्वयं ही मान जाना। कोई मनाने नहीं आता। फिर सोचता हूँ ईश्वर को कौन मनाने जाता है जो मुझे मनाने आये। अपना काम करते जाओ।

मुकुट लगा कर एक दिन सोमू मेरे सामने आ खड़ा हुआ। मैंने पूछा सोमू क्या बात है? कहने लगा-''सर जी मैं यह मुकुट पहन कर दुकान पर जाऊँ। लाला जी को दिखा आऊँ।'' मुझे हंसी भी आई और क्रोध भी। मैंने बड़े प्यार से उसे समझाया ''सोमू-यह मुकुट, तीर कमान, दुम-मूछ, दाड़ी यहाँ स्टेज पर ही ठीक लगते हैं। इन्हें बाहर नहीं ले जाते।'' पर सोमू ने ज़िद पकड़ी थी कि वह अपने मालिक को दिखाना चाहता है कि वह राम बन रहा है। सो सोमू हठात् उन्हें दिखा ही आया।

लीला का दिन आ गया। सारे हैरान थे। सोमू जैसे ही आ रहा था कि दर्शकों की ओर से तालियाँ-ही-तालियाँ बज रही थी। उस के हर संवाद पर वाह-वाह तथा तालियाँ।

शो खत्म हुआ तो दो-चार लोगों ने सोमू के लिए ईनाम भेजे जो सोमू को मंच पर ले जा कर दिलाये।

सोमू उल्लासित था। लक्ष्मण और सीता सिर थाम कर बैठे हुए थे।

ग्रीन रूम में अफरा-तफरी का माहौल था। सारे मेकअप साफ़ कर रहे थे। अस्त्र-शस्त्र और वस्त्र संदूखों में रख रहे थे। मूछें, दाड़ियाँ सम्भाल रहे थे। पर सोमू कहीं नज़र नहीं आ रहा था।

मैंने चौधरी से कहा। चौधरी ने आकर बताया कि सोमू अशोक वाटिका में बैठा हुआ है और वहाँ से उठ नहीं रहा है। मैं गया, मेरे साथ बहुत से लोग थे। सोमू को मेकअप उतारने के लिए कहा। पर सोमू मुकुट, तीर-कमान छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। वह कहता जा रहा था-''अब मैं रामचन्द्र जी हूँ। अब मैं लौटकर दुकान पर नहीं जाऊँगा।'' हम सब ने उसे पकड़ कर मंच पर से घसीटा, उस का मुकुट उतारा। तीर कमान और पुष्प-हार जबरदस्ती उतारे। फिर उसे बाहों और टांगों से पकड़ कर उस का कुर्ता-धोती उतारे। पर सोमू निरन्तर चिल्ला रहा था। ''मैं अब रामचन्द्र जी हूँ। अब मैं वापिस दुकान पर नहीं जाऊँगा।'' हम सब ने उसे पकड़ कर मंच पर से घसीटा। पर सोमू निरन्तर चिल्ला रहा था। ''मैं अब रामचन्द्र जी महाराज हूँ। मुझे लीला से नीचे न उतारो। मैं राम हूँ। अब मैं सोमू नहीं राम हूँ।'' हमारे सभी ऐक्टर हैरान-परेशान थे।

ooo

समझौता

❑ शीतल शर्मा

सोहानी को आज जितना दु:ख पहुँचा उसको ब्यान तो शायद वह नहीं कर सकती थी, और ना ही उसके दिल के इस दर्द को निकालने के लिए उसके पास शब्द थे। मगर उसकी आँखों से बहते हुए आंसुओं की बरसात उसके दर्द की दास्तां सुना रहे थे।

और सवाल कर रहे थे इस समाज से आखिर ऐसा क्यों?

ऐसा क्या है कि एक औरत हर काम कर सकती है जो मर्द करता है, फिर भी ज़िंदगी के हर मोड़ पर उसे यह एहसास क्यों दिलाया जाता है कि वह हीन है। औरत के लिए एक मर्द के सहारे के बिना जीना इतना कठिन क्यों है?

आज उसकी आँखों के सामने उसका बीता हुआ समय बार-बार घूम रहा था और याद आ रहा था वह दिन जब उसकी शादी सुरेश के साथ हुई थी।

उसकी पढ़ाई अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि घरवालों ने उसका रिश्ता तय कर दिया। मगर सोहानी शादी नहीं करना चाहती थी। उसकी जिन्दगी का सपना कुछ और था आगे पढ़ने का और कुछ बनने का।

मगर घरवालों की खुशियों के आगे उसकी अपनी खुशियों ने दम तोड़ दिया। घरवालों की इच्छा को उसने अपनी मज़बूरी समझकर और हालात से समझौता कर सुरेश से शादी कर ली। सुरेश एक पढ़ा-लिखा लड़का था, उसने हमेशा सोहानी को खुश रखने का वादा किया। मगर अपने वादों को वह निभा नहीं पाया। जिसका कारण थे उसके घरवाले। वह अपनी पत्नी और माँ कि इच्छाओं के बीच उलझ-सा गया। सोहानी नौकरी करना चाहती थी। मगर उसका सास दादी बनना चाहती थी। घर की सुख शान्ति बनाए रखने के लिए उसने अपनी ज़िन्दगी से फिर एक समझौता कर लिया।

यह सोचकर वह अपने गमों को भुला देती कि उसके फैसले से सुरेश खुश है, मगर उसके मन में कभी-कभी सवाल उठता कि क्या कभी सुरेश ने जानने कि कोशिश की उसके फैसले से मैं कितनी खुश हूँ। खुश हूँ भी जा नहीं।

पति-पत्नी के रिश्ते में जरूरी होता है कि हम एक-दूसरे कि इच्छाओं का सम्मान करें ना कि अपनी इच्छाएं या अपनी सोच को एक-दूसरे पर थोपे। वह फिर अपने ही सवालों में उलझ कर रह गई और उसके इन सवालों की बजह थी उसकी सास। वह दादी तो बनना चाहती थी मगर सिर्फ एक पोते कि। सोहानी से यह सब सहन नहीं हुआ तो उसने अपनी सास से कहा- ''अगर यह सब बातें आपकी माँ ने सोची होती तो क्या आज आप यहां होतीं?

* *यह कहानी जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी और उत्तर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र पटियाला के सहयोग से आयोजित कहानी गोष्ठी से पढ़ी गई है।*

अगर समाज की हर सास आपकी तरहां सोचेगी तो पुत्र रत्न को देने वाली वो मांएं फिर कहां मिलेंगी।" मगर उसकी बातों का उस पर कोई असर नहीं हुआ।

समय गुज़रा और सोहनी ने एक बेटे को जन्म दिया। घर में खुशी का वातावरण था। मगर बेटे के जन्म के छः महीने के बाद ही सुरेश की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई और सोहानी पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। सुरेश के बिना जीना उसके लिए मुश्किल तो था ही मगर घरवालों और समाज ने उसका जीना और भी मुश्किल कर दिया था। सास बात-बात पर उसको ताने देती, मगर उसने हालात से समझौता कर लिया।

जैसे घरवालों ने रखा वैसे ही रहना उसने सीख लिया। मगर जब उसके बच्चे को भी घरवालों ने नकार दिया। तो उसने घरवालों से अलग रहने का फैसला किया और एक छोटी-सी नौकरी से शुरुआत कर के अपने बेटे को पढ़ाया और उसे इस योग्य बनाया कि वह समाज में खड़ा हो सके।

जिस बेटे पर उसने अपनी ज़िन्दगी की हर खुशी न्यौछावर कर दी थी। आज उसी बेटे ने उसे अपनी खुशियों में शामिल नहीं किया।

आज उसे दूसरी बार इस बात का एहसास हुआ कि वह विधवा है। एक बार तब हुआ था जब उसने अपनी मांग से सिन्दूर पोंछा था, हाथों से चूड़ियां तोड़ी थी, और गले से मंगलसूत्र उतारा था, और दूसरी बार अब हुआ, जब उसके बेटे ने अपनी ही शादी में अपनी ही मां को अपशकुन समझ कर सम्मिलित नहीं किया।

समाज कि बातों में आकर उसने भी अपनी माँ से किनारा कर लिया।

हमारे समाज में किसी भी शुभकार्य में एक विधवा कि उपस्थिति को बुरा माना जाता है। इस बात को उस बेटे ने मान लिया, जिसकी ज़िन्दगी में बचपन से लेकर आज तक माँ के सिवा कोई दूसरा रिश्ता ही नहीं था। वह ही बेटा आज समाज की बात कर रहा था, रीति-रिवाजों की बात कर रहा था।

यह कहाँ का इन्साफ था कि इकलौते बेटे की शादी में उसकी विधवा माँ को समाज और रिश्तेदारों द्वारा किसी रस्म में न बैठने दिया जाए। बारात के निकलते समय भी वह कमरे में बन्द होकर खिड़की से परायों की तरहां अपने बेटे को दूल्हे के रूप में देखने के लिए झांकती रही।

बहू के आने पर भी उन्हें अपशकुन के नाम पर दूर रहने पर विवश कर दिया गया। दुःख तो इस बात का था कि उसके पढ़े-लिखे बेटे ने एक बार भी इस रस्म का विरोध नहीं किया। जिस माँ ने अकेले अपने दम पर संघर्ष और मेहनत कर के अपने बेटे को बड़ा किया वह विधवा होने मात्र से 'बदशगुनी' कैसे हो गई?

सोहानी अपनी ही सोच में डूबी थी कि अचानक एक आवाज़ आई 'माँ जी आशीर्वाद दीजिए।' यह आवाज़ उसकी बहू की थी। सोहानी स्तब्ध-सी रह गयी और अपने को संभालते हुए आशीर्वाद देते हुए बोली-'सदा सुहागन रहो।'

ooo

उत्सव तुम

❑ डॉ. निर्मल विनोद*

उत्सव तुम मेरी आँखों के, मेरे भाव-पुरुष रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

बैठा तू कदम्ब की डाली पर बांसुरी बजाता
यमुना-तीरे महारास में, अपने पास बुलाता
तेरी मुस्काती छवि में बँध, टूटे सब बन्धन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

धूलि-सने, गोधूलि-समय तुम, घिरे ग्वाल-बालों में
गोधन लिये साथ घर लौटे, दीप जले आलों में
वंशी-झांझ-पखावज के संग, सृष्टि करे नर्त्तन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

मोह-पाश में बँध-बँध बाँधो, पाश तोड़ फिर चल दो
नन्द गाँव, बरसाने, मथुरा को प्रभास को बल दो
देह-द्वारिका में बिराज, मन करदे वृन्दावन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर उत्सवमय तन-मन रे!

श्याम! सघन आलोक-परिधि के, केंद्र आँख से ओझल
राधा की स्वर्णाभ देह की, किरणों में तुम झल-मल
सहज प्रकृति से परम पुरुष का, अनुपम, दिव्य मिलन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

प्रेम-दीवानी मीरा-जोगन का, गोविन्द-गुण गाना
मिलनोत्सव पर मनुहारें कर, जोत में जोत समाना
वंशी के सुर में तूंबी की, तुन-तुन का गुंजन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

तुम लीलामय एक पहेली, अद्‌भुत लीला तेरी
तुझ विराट की छवि निहार कब पातीं आँखें मेरी
अहं-विसर्जन, पद-पंकज-रज में हो मनमोहन रे!
तेरे आकर्षण में बँध कर, उत्सवमय तन-मन रे!

ooo

* सुशील निवास, हरिसिंह नगर, रिहाड़ी कालोनी जम्मू।

मिलन-पल

राधा! तेरे नयनों में, रूप खिला मोहन का
श्याम-रंग छलक गया, भेद खुला चितवन का

जब से तू कान्हा की, मुरली-धुन सुन आयी
मोहनी मधुर कोई, लगती तुझ पर छायी
बदल गया ताल तेरी, पैंजनियां-बिछिन का
श्याम रंग छलक गया, भेद खुला चितवन का

अब भी तू मधुवन में, महारास में खोयी
अब भी तेरी अखियाँ, लगतीं सोयी-सोयी
नस-नस में थिरकन है, जादू है नर्त्तन का
श्याम रंग छलक गया, भेद खुला चितवन का

नीलकमल की सुगन्ध, सोनजुही-काया में
कान्हा की लीला में, डूबी तू माया में
थम गया समय, ठहरा कहीं पल मिलन का
श्याम रंग छलक गया, भेद खुला चितवन का

चंचल पीड़ा

❑ निदा नवाज़*

अरी ओ चंचल पीड़ा
क्यों फेंकती हो पत्थर
मेरे भव्य सागर में
और भाग जाती हो
दबे पांव वापिस
पानी पर फैले
दायरों के तनाव को
अनदेखा करती?

अरी ओ नटखट कसक
क्यों देती हो दस्तक
मन मन्दिर के द्वार पर
और भाग जाती हो
दबे पांव वापिस
यादों के नाद घन्ट को
अनसुना करती?

यह जानते हुए भी
कि आँख और बारिश का
रिश्ता
उतना ही पुराना है
जितना नींद और ख़्वाब का।
तन्हाई को ओढ़ कर
इस दहकती बरिशों के
मौसम में भी
पार कर सकता हूँ मैं
समय का यह
विशाल समुद्र
लेकिन तुम साथ चलो तो
मेरे ज़ख्मों की हरयाली को
मिलेगी
नमक की मित्रता ०

---

* कोयल पुलवामा श्रीनगर

ज्वरग्रस्त

❑ पृथ्वीनाथ मधुप

भयंकर ज्वरग्रस्त
ग्रीष्म की सूनी सड़क
दोपहर में
लेटी निढ़ाल अजगर-सी

सीने से हो कर
रोम-रोम व्यापी
धमनियों में बही
पिघले तारकोल सी

आँखें लू हुईं
मस्तिष्क तपा शून्य
साँसें-
बूंद को तरसती-
फुदक
व खुली चोंच की हाँफ

एक भयंकर ज्वरग्रस्त-
ग्रीष्म की सूनी सड़क
दोपहर में
मुझ में
पसर गई

०

आश्चर्य

बढ़ाते ही क़दम
गली, सड़क, दफ़्तर... में
स्टूलों पर
पिनक को देह दिये
ऊँची-नीची कुर्सियों पर बैठे
मिलते
असंख्य

साल-ब-साल
अमोघ बाण चलते
घेराव करती लपटें
गहराई मापते सीनों की
तेज़ त्रिशूल
फिर भी
रावणों, महिषासुरों के
दल के दल
जनते कैसे!!!

०

* म० नं० 58, सरस्वती विहार, जम्मू-180002

घर के पास लिया है इक घर

❑ प्रो० फूलचंद मानव*

घर के पास
लिया है इक घर
फिर भी मन परदेसी क्यों?

देह देश की सीमाओं में
बार-बार मन घूमा
खोजा, पाया निज धरती को
अपनेपन को चूमा

आसपास खलबली विदेशी
अंदर आस इक देसी ज्यों

नयन भिगोये पलक सजाये
साथी घूमे आये
संगी मनुहारों के झूले
बार-बार यों भाए

एकाकी पंछी की दुविधा
दिन-दिन यहां समेटी ज्यों

उजली आशा के पंखों पर
एक उड़ान भरी है
मुखरित मंज़िल तक आने को
जां सौ बार मरी है

गहरी काली इस सलेट पर
उजली लिखे सलेटी ज्यों,

हंस अकेला मन का मेला
पाए खुश हो जाए
निश्चित पता ठिकाना इसका
बोलो कौन सुझाए

चुना मीत के साथ मीत को
मन की इक दरवेसी ज्यों

०००

* *239 दशमेश एंक्लेव, ढकौली रोड, ज़ीरकपुर 140603*

धूप : तीन चित्र

❑ सुभाष रस्तोगी*

एक

नहीं बुलाया हमने
धूप को
वह चली आई
जैसे
चला आता है आशीर्वाद
मां का
हमारे जीवन में
अनायास ही
चुपचाप ०

दो

घोर बारिशों के दिनों में
धूप निकल आती है यक-ब-यक
हमारे ठंडे चूल्हों को तपाने
सूखी ज़मीन का कोई साबुत टुकड़ा
हमें मुहैया कराने

धूप बताओ तो सही
तुम हमारी क्या लगती हो
हम कौन हैं
तुम्हारे! ०

तीन

कभी कुछ नहीं कहा
धूप ने
कभी कुछ नहीं चाहा
धूप ने
सदियों से
धरती को
रसवंती बनाती आ रही है धूप! ०

०००

* *1216-ए, सैक्टर 41-बी चण्डीगढ़-160036*

बंधुआ

❑ प्रेम विज*

अंधेरे की खाई
जो पसर गई है
मेरे और तुम्हारे बीच
उसे पाटना भी जरूरी है
लेकिन क्या कभी पाट पाए हो भाई
तुम कभी अंधेरे के अतंराल को
यह सोचना भी ज़रूरी है।

जब पूरी महफिल मंत्रमुग्ध हो
सुन रही होती है तुम्हारी कविता
तब किस सबब से
सील खाई मिट्टी वाला पसीजा चेहरा
उग आता है तुम्हारे चेहरे पर
सोचा है तुम ने कभी।

जिंदगी भर
कोल्हू के बैल की तरह खट कर
क्यों नहीं जुटा पाए वह एक सतरंगी शाम
जिस के आंचल में
कुछ लम्हों के लिए ही सही
अपनी पत्नी और बच्चों से चुहल का एक आसमान

तो तान सकते अपने लिए
बॉस के बेहूदा जोक्स पर
कंठ से ठहाके लगाते रहे
और उस की अश्लील हरकतों को भी
क्यों सहन करते रहे चुपचाप

उन के इशारे पर
दिन को रात और रात को दिन
कहने से गुरेज़ तक नहीं करते
तुम भी क्या बंधुआ मजदूर नहीं हो भाई
उठो मौसम के आसार को देखो
धरती जो तन गई है प्रत्यंचा की तरह
उस के सबब को समझो
और शब्दबेधी बाण की तरह छूटो जब कमान से
तब धराशायी कर दो उन के सभी व्यूह
तभी भाई
तुम बंधुआ होने के अभिशाप से
मुक्त हो सकोगे ०

---

* *1284 सैक्टर 37 बी चण्डीगढ़-160036*

नंगे पांव ज़िन्दगी

❑ अनिला सिंह चाड़क *

कहने को वह ज़िन्दगी है
मन के सूने गांव में
बांसुरी-सी बजती है
फिर रूह के कानों को
बन्द करके कहती है
सुनो मेरी मीठी धुन
और सात सुरों से तरंगायित
मन से लिखो मधुर संगीत,
बजने दो इन्हें उदास टहनियों में!
कहने को वह ज़िन्दगी है
सुलाती है गुलाब की पंखुड़ियों में,
उससे पहले रुह के जिस्म को
असीम दर्द से पंगु बनाकर
कहती है,
महसूसो इस आनन्दमयी स्पर्श
को
लिखकर फिर असंख्य गीत
कांटों के सीनों में भर दो
प्यार भरे स्पर्श की अनुभूति
कहने को वह ज़िन्दगी है
असंख्य फूलों की खुशबू
लेकर
सूने आंगन में उतरती है
रूह की नासिका को बन्द
करके कहती है
सूंघो इन्हें और महका दो
अपने मन-प्राण,
लिखो फिर खुशबुओं से
महकी हुई कविताएं
असंख्य काग़ज़ के फूलों में
इन्हें टांक दो,
कहने को वह ज़िन्दगी है
मन की सूखी जुबान पर
अमृत-सी टपकती है,
इससे पहले वह
स्वाद चख़ने के सारे
तंतुओ को कर देती है
नष्ट
कहती है फिर चखो इसे
और आनन्दित होकर लिखो
अमृतमय गीत
प्यासे मरु के वृक्ष पर
फैला कर अमृत सागर
बना डालो।
कहने को वह ज़िन्दगी है
बस!

* 697/7 ई० सैनिक कालोनी जम्मू

पिछला दिन

❑ शेख मुहम्मद कल्याण

हुआ उदास कई बार
देखा धरती को अजीब शक्ल में
चिड़ियों के पर तलाशता रहा अपने आंगन
और दूर से निकल गयी हवा
चकमा देकर
समय नहीं मिला
अपने अनुकूल मुझे
पथराई आंखों ने देखे
टूटते सपने
पिछले दिन
वो सब कुछ हुआ
जो नहीं होना चाहिए था
देख बच्चों ने फटी पतंग की ओर
गिराए आंसू
प्रेमियों ने बहाई
बहती नदी में
आरू की कश्ती
शहर पूरा नुपसंक सा लगा
चर्चा थी पूरे शहर में
और नहीं मिली तुम्हारी कोई चिट्ठी

पिछले दिन
इस बीच
नथुनों में भरी
बारूदी गंध याद आई
याद आई
खत्म हुई हरियाली
सुखी घास याद आई

---

* 505/2 नरबाल पाई सतवारी, जम्मू

टूट चुके सपनों को
सहेजने का बहाना याद आया।

रात-रात भर
कविता की पुस्तक से झांकता
तुम्हारा चेहरा
और चेहरे में
पवित्र ग्रंथ याद आया
पिछले दिन की कई
अनहोनी घटनाएं याद आईं
नहीं मिली कोई अच्छी खबर
प्रतिक्षा में बीत गया
एक और
पिछला दिन।

०००

बूंदों की आहट

❑ शक्ति सिंह

जिस तरह सांस ले रही सारी इमारत
पिंजरे में बंद इक तोते के दिल में
मैं जानता था
एक दिन ऐसा ही होना था
क्या सरकार 'बंद' हो गई?
आजकल नहीं 'छपती'?
थोड़ी ही देर में बारिश होने वाली है
और आसमान में छाया यह
बेवक्त अंधेरा रात में बदल जाएगा
सुबह नहाकर निकलेगा इक नन्हा सा सूरज
वो आंगन में दौड़ेगा
उसे तंग न करना
उसे फाइलों में न बांट देना

०००

लघु मन

❑ शारदा साहनी

लघु सा! यह मन,
अरुप अछोर
कभी वामन रूप धर
ढाई पग में ही
तीन लोक माप लेता है।
कभी मनुष्य को
निज अटूट पाश में बाँध
अपनी अलंध्य चार दीवारी में रख
कभी इधर कभी उधर
नट सा नचा-नचा कर
हंफा देता है।
और कभी तो..
फैली हुई जोंक सी कामनाओं को
और भड़का
भयानक धधकते हुए यज्ञकुंड में
मनुष्य की बलि चढ़ा देता है
हाय रे....
कैसा है यह मन
कभी तो...
रागमूर्ति द्वेषमूर्ति मदमूर्ति रचकर
उसे शत-शत खंडों में त्रुटित कर
मनुष्य को भयभीत बना
विक्षिप्त भिक्षुक सा बना
एक-एक कौर के लिए भी
मुहताज बना देता है।
पर कभी तो...
यही बौना मन
पूर्ण बन/बोधी बन
शांत अरूप अडोल
निष्कंप वर्तिका का
क,ख,ग, मनुष्य को सिखा
उस के अंदर की धरोहर से
उस का परिचय करा
विश्व के अनुतरित

सागर तट पर
सब कुछ विस्मृत करा
कृष्ण की गीता के कछुए समान
उस के सभी अंग सिमटवा;
चिन्तन ऊष्मा को प्राप्त करवा;
महान सूरज की तपन में डुबा;
महकने धड़कने वाला बना;
त्रिभुवन दिग्विजयी बना देता है।

ooo

* मकान न० 14 गली न 2. सूर्य विहार बोहड़ी तालाब तिल्लो जम्मू-180002

कहती है हंसते हुए

❑ सुरेश सेन 'निशान्त'

बड़े मनोयोग से
सजाती रही घर

बिखेरती रही हंसी
छुपाती रही आंसू

गोबर मिट्टी से
लीपती रही
अपना घर-आंगन

पोंछती रही
जीवन के चेहरे से
उदासी की धूल

घर भर की
प्यास बुझाने को
कई कोस दूर से
ढोती रही पानी
छुपाती रही अपनी थकान

बचाती रही
बड़ी जुगत से
चूल्हे में आग
हांड़ी में नमक
आंखों में सपने
खुशियों में रंग
अन्धेरे में उम्मीद।

ख़्यालों की धुनकी पे
पिंजती रही दुख भरी ऋतुएं
बुनती रही
समय के करघे पे
बच्चों का बेहतर भविष्य

काढ़ती रही जीवन की चादर पे
कभी न मुरझाने वाले
बेहद सुन्दर फूल।

नगें पाँव चलती रही
अपने पांव की
फटी बिवाइयों की ओर
गया ही नहीं ध्यान
देखा ही नहीं
अपने दर्द, अपने दुखों की ओर

जीवन में इतना डूबी थी
कि उसे पता ही नहीं चला
कि वह भी थी।

सालों बाद
हैरान सी रह गई वो
देखा जब ध्यान से उसने अपने को।

कहती है फिर हंसते हुए
अरे! यह तो बीत गया जीवन
कितने ही काम हैं
जो रह गये अभी अधूरे

समेटने लग पड़ती है
चीजें बिखरी हुई
बड़े मनोयोग से

○○○

* द्वारा श्री कुलदीप सिंह सेन गांव सलाह, डा० सुन्दरनगर-1 जिला मण्डी (हि० प्र०) 174401

बेटियाँ

❑ ओम नागर 'अश्क'

(1)

बेटियाँ!
सिसकती हैं
घर से विदा होते समय
रोती हैं
माँ-बाप के कंधो पर
रखकर अपना सिर
और वहीं से
बीनकर कुछ संस्कार
अपने साथ ले जाती हैं
संस्कारों की पोटली
जीवनभर
निभाने के वास्ते!

(2)

बेटियाँ!
नहीं सेंक पाती
लोभ के तवे पर
चपातियां
उनकी नाज़ुक हथेलियां
बिस्तर पर, रात भर
कराहती हैं
पीठ पर छपी
नीली धारियों के
दर्द से।

बेटियाँ!
घासलेट से तर-बतर
अचानक भभकती हैं
या रसोई में
गैस सिलैण्डर फटने
के बहाने
सहम जाते हैं उनके
तमाम सपने
यह सब नहीं होता तो भी
बेटियाँ!
जलती रहती हैं अनवरत
अपने ही अंतस की आँच से
तपकर कुंदन होने के लिये
गोया बेटी होना ही
जरूरी शर्त है
तपने की... ∘

* *857 सेक्टर-4, केशवपुरा कोटा-9 (राजस्थान)*

ममता

❑ विजय सिंह नाहटा

सोई हुई मां के संग
अधकचरी नींद में सोया बच्चा
अवचेतन में भी खींचता दूध
गोया धरती को आलिंगन में ले रहे हों
अलौकिक देवताओं के दल।

चिड़िया

एक चिड़िया
मन्द स्वर में गा गयी
विरासत मौन थरथराता अहसास
तैरता शिलाखंड हवा में
नन्हा-सा जीवाश्म जो वह गा गयी।

विहंगम दृश्य

नभ के पांखियों के चित्र-दल ने नयन-कोर से
जिसे उकेरा
धवल आभा कांतिमय
एक सम्मोहन पसरता चारों ओर
दृश्य की चादर तले लिपिबद्ध सन्नाटा
महाआकार
टिक-टिक धड़कता जीवन
प्रौढ़त्तर औ'जटिल।

○○○

* बी-92 स्कीम बी-10 गोपाल पुरा बाई पास जयपुर 302018

एक स्त्रीलिंग

❑ डॉ० रीता हजेला "आराधना"

यूं ही नहीं मिल गया
अथाह जलराशि को
दुर्गम पहाड़ों के बीच से
गुज़रते हुए
एक स्त्रीलिंग नाम

वो कहलाई नदी
क्योंकि भारी भरकम स्थूल चट्टानें
रोक नहीं पाई उसका रास्ता
अपने छोटे से
कांत कलेवर से कुरेद कर उन्हें
वो बढ़ती गई
अपना मुंह किए हुए नत
ठीक एक स्त्री की तरह

भले ही समन्दर में मिलना
उसकी नियति
मगर अपने पूरे जीवन में
मधुर निर्मल जल से
प्यास बुझाना ही
रहा उसका कर्म

शुष्क भले ही हो जाए
कभी खारा नहीं होने दिया
उसने अपना जल।

ooo

* *687 हूडा फेस-II सैक्टर 12; पानीपत हरियाणा-132803*

उम्मीद

उससे ही की जाती है उम्मीद
खून के रिश्तों को नकार,
वो बस उन परायों को दे
मान-सम्मान प्यार
जो कल तक थे अनजान,
क्योंकि वो पति से जुड़े हैं
सोए और जागे उनकी नींद,
डूब जाए उनके
सुख और दुःख की
तलहटी में,
सुनते और सहते हुए
अपनों के प्रति कटाक्ष,
वो सचमुच चाहती है डूबना
मगर वितृष्णा से
भर जाता है उसका मन,
न्यौछावर करते हुए
मां-बाप का प्यार,
भाई-बहन का मान-सम्मान दुलार,
खामोशी से झेलते हुए
वाक्यांशों के दंश की चुभन,

कैसे करते हैं लोग
इस पर भी उससे
उम्मीदों पर
खरा उतरने की उम्मीद,
और क्यों?

ooo

दोहे

❑ अर्श सहबाई

कहीं पे कांटे फूल हैं कहीं पे छांव धूप
कहने को वो एक है लेकिन कितने रूप

बात बड़ी दिलचस्प है बेशक है यह अजीब
गुरबत है कायम वहीं मिटे हैं सिर्फ ग़रीब

याद आए हर बात वो गया हूँ जो मैं भूल
जब भी किसी किताब में देखूं सूखे फूल

अपनी आंखों से लगा उनके पावों की धूल
दुनिया में हक के लिए गए जो फांसी झूल

रहता हूँ किस रंग में कैसा मेरा हाल
सच कहना तुमने कभी ख़ुद से किया सवाल

हमने निभाई आपसे हर सूरत में प्रीत
कहने वाले तो कहें कौन है किसका मीत

इस पर भी ख़ामोश हूँ जानता हूँ यह भेद
हर दिल में इक ज़ख्म है हर दिल में इक छेद

बारिश से महरूम हूँ जैसे सूखा खेत
वे दरिया की मौज है मैं सहरा की रेत

पनघट की वो रौनकें वो पेड़ों की छांव
जिनके दम से थीं कभी शहर बने वो गांव

यहाँ तो इन्सां का कभी चलता नही है ज़ोर
कब टूटे कुछ पता नहीं सांसों की यह डोर

टूट चुकी हैं चूड़ियां खाली दोनों हाथ
इक बेवा भूले कहाँ हुआ जो उसके साथ

निर्धन कन्या रो पड़ी यह कैसा वरदान
जिनसे मैं ब्याही गई वो है पिता समान

इन पर जो भी जुल्म हो यह समझे संजोग
कहाँ मिलेंगे गांव के सीधे सादे लोग

अर्श यहाँ बिन आग ही जलते हैं अरमान
दिल है इक ऐसी चिता दिल ऐसा श्मशान

मुझ को यह मालूम है ख़फ़ा है वो बेबात
जिसका रस्ता देखते गुज़री सारी रात

उन्हें बराबर जानकर हमने की है भूल
दुनिया के सरताज वो हम पांव की धूल

पहले वो नाराज़ था अब है दिल से दूर
छोटे-छोटे ज़ख्म ही बनते हैं नासूर

ooo

औरत

❑ डॉ० जसपाल बरवाल

औरत बना
जुल्मों सितम किया
सहती रही

दुनिया की मैं
जननी कहलाई
जनती रही

प्यासे थे तुम
गंगा बनकर मैं
बहती रही

वन में भेजा
पतित नहीं थी मैं
कहती रही

जनते मारी
कभी जवान मारी
मरती रही

कोख में मारा
होश में मारा
डरती रही

शक्ति थी मैं भी
गाय बन घरों में
रहती रही

समझो पुरुषो
अब तक क्या-क्या मैं
सहती रही

ooo

* कक्ष-206, डी डी ई, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

प्यास

❐ कमलजीत चौधरी

शबनम
ओढ़ कर रोज़
एक फूल आता है
समुद्र के किनारे-

मगर
फूल नहीं जानता
समुद्र की प्यास
शबनम नहीं है........

o

फासला

मैं तो कब से
उतर चुका हूँ
तुझ में कहीं भीतर

तुम खड़े हो अब भी
मेरे किनारों पर
जहां से माप नहीं सकते हम
अतल गहराइयां एक दूसरे की......

ooo

* *गाँव व डाक-काली बड़ी, साम्बा।*

जीवन की चाह

❑ ओम प्रकाश 'दीपक'*

देख कर बुलबुले
बहते जल के भीतर
सोचने लगता हूँ मैं
क्या ज़िंदगी मेरी भी
इसी की तरह
दो पल की
सिर्फ दो पल की है ?
सोचते-सोचते यह सब
उदास हो जाता हूं-
पर दूसरे ही क्षण
एक बुलबुले के बाद
जब देखता हूं
दूसरा बुलबुला
धूप में मुस्कुरा रहा है
तो एक नई उम्मीद
हंसने की
मुस्कुराने की, जीने की, फिर से
उमड़ आती है मेरे भीतर
और तब मैं
एक जीते जागते
नये बुलबुले की तरह
सुबह के सूरज की रोशनी में
झूमने लगता हूं।

०००

* *गुढ़ा ब्राह्मणां, अखनूर (ज. क.) 181201*

उदास ईश्वर की कथा

❑ महाराज कृष्ण संतोषी*

अचानक मंदिर के भीतर कुछ हलचल हुई। अभी रात का पहला ही प्रहर था। सिपाही ने मंदिर के द्वार की तरफ टार्च घुमाई। मंदिर का द्वार बंद था और ताला यथावत। वह कुछ निश्चिंत हुआ। थोड़ी देर बाद फिर वैसी ही हलचल हुई। इस बार सिपाही ने मन-ही-मन सोचा कि कोई उपद्रवी चूहा अकेले-अकेले भगवान के प्रसाद का सुख लूट रहा होगा। लूटता रहे उसका क्या। चूहों पर नज़र रखना उसकी ड्यूटी नहीं। उसे याद आया बचपन में अक्सर वह अपने पिता से कहा करता था कि गणपति को वाहन के रूप में छोटा-सा चूहा ही क्यों मिला है। तब पिता जवाब देते 'गणपति ईश्वर है, उसके चूहे को छोटा मत समझ। छोटी होती है उसको देखने वाली आंख।' मैं प्रतिवाद में कुछ कहता तो पिता तुरंत डांट देते। कहते कि उम्र अभी कच्ची है आगे जाकर सब समझ जाओगे। आज जब मैं पचास बरस का हो गया हूं तो गणपति बप्पा के चूहों के प्रति मेरे मन में कोई आध्यात्मिक भाव पैदा नहीं हुआ है।

मंदिर में फिर हलचल हुई। इस बार सिपाही को लगा कि जैसे मंदिर के भीतर कोई चहलकदमी कर रहा है। वह मंदिर की सीढ़ियां चढ़ा और बंद द्वार की सलाखों से भीतर झांकने लगा....

'यह क्या...?' उसके मुंह से चीख निकली। मूर्ति अपने स्थान पर नहीं थी। उसने ताला खोला और भीतर जाकर इधर-उधर देखने लगा। सचमुच मूर्ति अपने स्थान पर नहीं थी। उसे विश्वास नहीं हो रहा था। उसे लगा, शायद उसका मतिभ्रम हो। कहीं उसे देखने में भूल तो नहीं हुई है। पर आज उसने शराब की एक बूंद भी तो नहीं चखी थी। वह बहुत घबराया। इस आतंककाल में ईश्वर भी अब सुरक्षित नहीं रहा। उसने मंदिर का द्वार बंद किया और अपने साथियों को सूचित करने के उद्देश्य से सीढ़ियों की ओर मुड़ा ही था कि पीछे से एक आवाज़ आई–

'अपने साथियों को सूचित करने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं मंदिर में ही हूं.....'

सिपाही वापिस मुड़ा और उसके मुंह से तत्काल निकला

'कहां ?'

'मंदिर में अपनी जगह।'

सिपाही ने खुली आंखों से दुबारा देखा। मूर्ति सचमुच अपनी जगह पर थी। उसने कंधे से बंदूक उतारी और मूर्ति के सामने नतमस्तक हुआ और दीन-हीन स्वर में कहने लगा–

---

* *113ए/4 आनंद नगर, बोहड़ी तालाब तिल्लो जम्मू*

'धन्यवाद ईश्वर! आज तुमने मेरी नौकरी बचा ली'

'पर तुम अपनी ड्यूटी तो दे रहे थे'-मूर्ति बोली।

'पर तुम मंदिर से गायब हो जाते तो फिर कौन मानता। सब इसे मेरी ही भूल-चूक समझते।'

मूर्ति चुप रही।

'अब ऐसा भद्दा मज़ाक कभी मत करना। नहीं तो मेरी रोज़ी-रोटी छिन जाएगी और मेरा परिवार भूखा मरेगा।' सिपाही दोनों हाथ जोड़े कह रहा था।

'तुम निश्चिंत रहो सिपाही...पर मेरी एक शर्त है।'

'कैसी शर्त ?'

''मैं जो पूछूं उसका उत्तर देना पड़ेगा, जो कहूं उसे सुनना पड़ेगा...।''

''जैसी आज्ञा प्रभु।''

''आओ फिर मेरे और निकट आकर बैठो।''

सिपाही आज्ञा शिरोधार्य कर मूर्ति के सामने पालथी मार कर बैठ गया। और मूर्ति बोलने लगी....

'सुनो सिपाही! मैं उनका ईश्वर हूं जिन्हें अपनी मातृभूमि से निष्कासित होना पड़ा। सदियों से उन्होंने मेरी पूजा की है और मैं भी उनकी भक्ति का मान रखता था। वे कभी मुझे लड्डू खिलाते, कभी पीले चावल, कभी दूध, कभी खीर। कभी मुझे अत्याधिक प्रसन्न करने के लिए मंदिर पर नया रंग-रोगन भी कराते। उनके मांगने की वृत्ति से मैं कभी उदास भी हो जाता लेकिन क्या करता... उन्हें बस मेरा ही आसरा जो था। वे मेरे सामने आंसू बहाते, दामन फैलाते और अपने बच्चों के लिए रोज़गार मांगते। अनब्याहे बेटे-बेटियों के लिए अच्छे-अच्छे वर। जर्जर मकानों की जगह पुख़्ता मकान। बहुत कुछ मांगते और......। वे भी क्या दिन थे जब मेरे आंगन में भक्त जनों की अपार भीड़ इकट्ठी होती थी। संगीत और नृत्य होता था। पर अब मैं बहुत अकेला हो गया हूँ।'

''क्षमा करें ईश्वर'' सिपाही ने बीच में टोकते हुए कहा।

'तुम अकेले कैसे हो सकते हो ? तुम सर्वशक्तिमान हो... अंतर्यामी हो... जगत के पालनहार हो... यह सृष्टि तुम्हारी है, नक्षत्र तुम्हारे हैं... यह पृथ्वी तुम्हारी है... हम सब तुम्हारे हैं... '

'झूठ! कोरा झूठ...!' ईश्वर का गुस्सा बोल रहा था।

'मैं अकेला ही नहीं, शक्तिहीन भी हो गया हूं। मेरे नाम पर लोग धरती का बंटवारा करते हैं, हत्याएं और लूटपाट करते हैं, बस्तियां जलाते हैं... लोगों को अपना वतन छोड़ने पर मजबूर करते हैं और मैं यह सब देखता रहता हूं.... जैसे मैं कोई ईश्वर ही नहीं...।' यह कहते हुए ईश्वर बहुत उदास हो गया था। कुछ समय मौन में बीता और फिर वह सिपाही के और करीब आकर कहने लगा।

'मेरी एक बात मानोगे सिपाही।'

'कौन-सी बात ?'

'कुछ दिनों के लिए मैं सिपाही बन जाता हूं और तुम मूर्ति बन जाओ।'

'नहीं ईश्वर! मुझे क्षमा करें...।'

'लेकिन क्यों ?'

''क्योंकि मुझे भी अकेलेपन से बहुत डर लगता है।''

०००

बोझ

❑ दीदार सिंह

दरवाज़े पर हल्की-सी दस्तक हो रही थी। पहले तो मंजू ने ध्यान नहीं दिया। यही सोचा कि शायद हवा से किसी चीज़ के हिलने की आवाज़ आ रही है। जब आवाज़ सतत आती रही तो उसने ध्यान दिया। आवाज़ तो दरवाज़े से आ रही थी। उसने उठकर धीरे से दरवाज़ा खोला यह देखने के लिए कि बाहर कौन है।

सामने एक नन्ही सी बच्ची खड़ी थी जो मंजू को देखकर मुस्कुरा दी।

''कौन ....?'' मंजू ने आश्चर्य से पूछा और साथ ही बच्ची की भोली छवि पर मोहित होने लगी।

''नहीं पहचाना?'' बच्ची ने भी हैरानी दिखाई।

''न...न... नहीं तो ....'' मंजू अनमने भाव से बोली।

''मैं.... आपकी.... बेटी हूँ.... ।''

''बेटी!'' मंजू चौंक-सी गई।

''हां, आपकी बेटी। आप पहचानेंगी भी कैसे! आपने तो देखने से पहले ही मुझे कुएं में....''

मंजू एकदम डर गई। ''तुम ज़िन्दा हो।'' उसने कांपते हुए बच्ची से पूछा।

''हां, मैं ज़िन्दा हूँ, आपके सामने, यह देखिए'' उसने दोनों हाथ फैला कर कहा, ''मैं आपको अच्छी नहीं लगती?''

''हां, हां अच्छी लगती हो! बहुत अच्छी.... बड़ी प्यारी ....''

''फिर आपने मुझे कुएं में क्यों ....?''

मंजू से कोई उत्तर न बन पड़ा।

''क्या मैं पापा को अच्छी नहीं लगी .... या दादी को ....?''

''प...प... पता नहीं। तू... तू... बाहर क्यों खड़ी है, अन्दर आ न।''

---

* *613/3 नानक नगर, जम्मू-180004*

''नहीं, मैं अन्दर नहीं आ सकती।''

''क्यों?''

''अगर मैं अन्दर आने योग्य होती तो आप लोग मुझे कुएं में क्यों फेंकते?''

''बेटी, मैं मजबूर थी... परिवार को बेटा चाहिए था...।''

''पर मैं अपनी इच्छा से तो नहीं आई थी।''

''जानती हूँ बेटी।''

''फिर भगवान की भेंट का तिरस्कार क्यों.... ?''

''बेटी तू मेरी मजबूरी नहीं समझ सकती।''

''अच्छा मम्मी, एक बात बताओ.... अगर सभी मांएं अपनी बेटियों को यों ही कुएं में फेंकती रहेंगी तो कल को अपने बेटों के लिए बहुएं कहां से लाएंगी?''

''बेटी कल क्या होगा, कौन जाने।''

''मम्मी, मैं आपका हाथ छू सकती हूँ?''

''हां-हां क्यों नहीं। यह लो ....''

''कितना प्यारा हाथ है'' .... वह अपने नन्हें हाथों से मंजू के हाथ को सहलाती है। फिर बोली, ''इसी हाथ से आप मुझे सहलातीं, नहलातीं, खिलातीं .... मगर .....।''

मंजू की अश्रुधारा बह निकली।

''मम्मी रो मत आओ मैं आप को कुछ दिखाऊं।''

''क्या? कहां?'' वह दुविधा में पड़ गई।

''मम्मी आओ तो सही ....।''

''यह तू मुझे उंगली पकड़ कर कहां लिए जा रही है....?''

''चलती आइए, आपकी जानी-पहचानी जगह है, आओ तो सही।'' मंजू उस बच्ची के पीछे-पीछे चलती एक जगह आ कर ठिठक गई।

''यह कुंआं.... इस कुएं में क्या है देखेने वाली चीज़ .....?'' वह नाक सिकोड़ती हुई बोली।

''मम्मी बहुत कुछ है।''

''उफ़ यहां तो बड़ी बदबू आ रही है.... जगह-जगह ये कूढ़े के ढेर....!''

''यह कुआं हमेशा से ऐसा थोड़ा था। मम्मी, इस कुएं पर कभी बहुत रौनक हुआ करती थी। सारे गांव के लोग यहां से पानी भरते थे। औरतें कपड़े धोती थीं, बच्चे नहाते, चीखते-चिल्लाते शोर मचाते थे, कुएं की मुंडेर पर गीत गूंजते थे। हंसती-गाती ज़िन्दगी का प्रतीक था यह कुआं। लेकिन समय ने इसकी यह हालत कर दी। अब तो लोग इसमें कूड़ा-कर्कट फेंकते हैं, या हत्या के बाद भ्रूण यहां फेंके जाते हैं। जैसे आपने मुझे फेंका था।''

भ्रूण का नाम सुनकर मंजू सिहर गई। वह इधर-उधर झांकने लगी। 'हां वही तो जगह है' उसने अपने-आप से कहा। ''यहां .... यहां एक निजी स्वास्थ्य केन्द्र भी तो था'' उसने फिर अपने-आप से ही पूछा।

बच्ची सब सुनती थी-समझती थी। वह बोली-''हां है तो, वह देखो, पिछली तरफ़'' उसने उंगली के इशारे से मंजू को बताया। ''स्वास्थ्य-केन्द्र आपके लिए होगा। अजन्मी कन्याओं के लिए तो यह क़त्लगाह है। ऐसे ही स्वास्थ्य-केन्द्र हम कन्याओं को आपकी दुनिया में नहीं आने देते।''

मंजू का ध्यान दूसरी ओर गया। उत्सुकता से बोली, ''लेकिन इस कुएं में रक्त-सनी सफ़ेद-सफ़ेद उन गठरियों में क्या रखा है? इतनी सारी गठरियां कहां से आ गईं?''

''श श अ अ! मम्मी, ये गठरियां नहीं, मेरी स्हेलियां सो रही हैं। इन्हें भी इनकी मम्मियां यहां फेंक गईं थी, जैसे आपने मुझे....।''

''क्या ये सोई ही रहती हैं? कभी जागती भी हैं?'' मंजू का डर और उत्सुकता बढ़ रही थी।

''जागती हैं, रात को सब जागती हैं। दिन को ये सब खूब सोती हैं। फिर रात-भर हम सारी स्हेलियां खूब खेलती हैं, नाचती हैं, गाती हैं और धमाल डालती हैं-खूब ऊधम मचाती हैं .... कभी परियां बन कर इधर-उधर उड़ती हैं। सारी रात यहां संगीत गूंजता है, हंसी के फ़ब्बारे फूटते हैं, कहकहे लगते हैं। जिन्हें कोई नहीं सुन सकता, केवल हम ही सुन सकती हैं।''

जैसे-जैसे अंधेरा बढ़ने लगा, उन गठरियों में कुछ हल-चल होने लगी। मंजू का मन हुआ कि वह भी इन नन्हीं परियों का नाच-गाना देखे। उसने देखा कि हर गठरी के लाल निशान में हल्की-हल्की रोशनी उदय होने लगी है। रोशनी, मोमबत्ती की तरह धीरे धीरे ऊपर उठने लगी, एक हाथ के बराबर उठ गई। उन रोशनियों में कुछ धुंधले चेहरों की आकृतियां

भी नज़र आने लगी। रोशनी इतनी तेज़ कि उसमें आंखें चुंधियाने लगी। वह रोशनी सारे कुएं में फैल गई थी।

फिर मंजू क्या देखती है कि सारा कुआं लाल हो गया–पूरे कुएं में रक्त भर गया और वह उसमें डूबने लगी। वह हाथ-पांव मार कर कुएं से बाहर निकलने का प्रयास करती है, लेकिन फिसलन के कारण फिर नीचे गिर कर डूबने लगती है। वह कुएं की मुंडेर को पकड़कर बड़ी मुश्किल से स्वयं को बाहर निकाल पाती है।

बाहर निकल कर हांफती हुई अपने घर की ओर भागती है। उसे पीछे से उसी बच्ची की आवाज़ें सुनाई देती हैं, ''मम्मी रुक जाओ! मम्मी मत जाओ! मम्मी रुक जाओ!''

भागते हुए उसका एक पांव एक पेड़ की जड़ से उलझ जाता है और वह ठोकर खा कर गिर पड़ती है। उसकी चीख़ निकल जाती है।

पास ही बिस्तर पर लेटे मदन ने उसको बाज़ू से पकड़ कर झंझोड़ कर जगाया और झल्ला कर बोला, ''क्या हर वक्त नींद में चीख़ती बड़बड़ाती रहती हो। आराम से सोने भी नहीं देती।''

वह उठ कर बैठ गई।

''क्या फिर कोई डरावना सपना देखा है?'' इस बार मदन के स्वर में खीझ का नहीं अपितु सहानुभूति का भाव था।

वह कुछ नहीं बोली और आंखें मलती हुई फिर लेट गई। उसने अपने माथे का पसीना पोंछा। चुपचाप लेटे-लेटे वह सोच रही थी कि क्या वह इस पाप-बोध से कभी मुक्ति पा सकेगी।

० ० ०

विपरीत दिशाएँ

❑ राजेन्द्र परदेसी*

गाँव बचपन में ही छूट गया था लेकिन भइया-भाभी के कारण रिश्ता नहीं टूटा था। कुछ वर्षो तक तो वहाँ आना-जाना नियमित रूप से होता रहा, परन्तु पत्नी और बच्चों की अनिच्छा के कारण इधर कुछ वर्षों से बिल्कुल समाप्त हो गया था। बच्चे सभी महानगर में पले-बढ़े; यहाँ के मोहल्लों और सड़कों से आये गये, इस कारण उन्हें गाँव की तुलना में शहर ही अपना ज़्यादा लगता था।

वैसे महानगर में उसकी भी अब एक पहचान बन चुकी थी। आस-पास के लोग उसे भी उसी शहर का मानने लगे थे। शायद इसी कारण उसे कभी-कभार भ्रम हो जाता कि उसका भी किसी गाँव से रिश्ता है।

मित्रों ने कई बार सलाह दी कि अब तो यहीं कोई फ्लैट आदि लेकर बस जायें, लौटकर गाँव क्या जायेंगे! उधर पत्नी और बच्चे कुछ दिनों से जिद्द कर रहे थे कि बगल में मकान बन रहा है उसी में से एक फ्लैट ले लीजिये। बड़े बेटे ने रहस्य भी खोला कि मैं और मम्मी उसे देख आये हैं, आप केवल हाँ कह दें, बाकी दौड़-भाग मैं खुद कर लूँगा।

पत्नी और बच्चों की जिद्द के आगे पंचमलाल का दिल पिघल गया। फ्लैट लेने का मन बना लिया। मित्रों और शुभचिन्तकों से भी सलाह माँगी तो सभी ने शहर में ही स्थायी रूप से बसने की राय दी। गाँव और शहर की सुविधाओं के तुलनात्मक आँकड़े भी प्रस्तुत किये। कुछ मित्रों ने अति उत्साह में यहाँ तक कह दिया कि गाँव भी कोई रहने की जगह है।

जब सभी की राय महानगर के पक्ष में हो गयी तो बहुमंजिली इमारत के एक फ्लैट की बात तय हुई। पंचम लाल के एक-दो मित्रों ने फ्लैट खरीदने के लिये बैंक से बात की। सहयोग का आश्वासन मिलने के बाद प्रारम्भ में अपनी चार लाख की पूँजी की आवश्यकता महसूस हुई। कोई भी बैंक कर्ज़-वर्ज़ तभी देगा जब अपने पास भी कुछ हो।

प्रश्न था कि चार लाख कहाँ से लाये जायें। थोड़ी बहुत रकम होती तो बात और थी। फंड से भी तो इतनी रकम पूरी नहीं हो सकती थी। एक ही रास्ता दिखाई दे रहा था। वह था-गाँव की अपने हिस्से की ज़मीन बेच कर पैसा लाया जाये। पत्नी ने तो पहले ही यही सलाह दी थी। पहले तो उसकी सलाह पंचम लाल को अच्छी नहीं लगी थी परन्तु अब वही सलाह पसंद भी आई। जब गाँव लौटना ही नहीं तो वहाँ की ज़मीन रखने से क्या फायदा? यही सोचकर गाँव में रह रहे अपने दो-चार परिचितों को पत्र लिखा। गाँव के कुछ नवधनाढ़यों को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अच्छा मौका लगा। पंचमलाल के हिस्से की ज़मीन खरीदने का प्रस्ताव उनके पास भिजवा दिया। पत्र के द्वारा बात पक्की हो गयी तो पंचमलाल ने गाँव आने की सूचना अपने बड़े भाई के पास भिजवा दी।

---

* *बी-1118 इन्दिरा नगर लखनऊ-226016*

गाँव पहुँचते ही पंचमलाल के भाई-भतीजों ने खुले दिल से उनका स्वागत किया। भाभी ने देवर के लिए विशेष पकवान बनाये। बहुत दिनों बाद दोनों भाई एक साथ भोजन करने बैठे तो भाभी को पुरानी बातें याद हो आयीं। बोली-'आज दोनों भाइयों को एक साथ देखकर कितना अच्छा लग रहा है।... भगवान करे ऐसा अवसर बार-बार आये।' भाभी कुछ ज़्यादा ही भावुक हो गयी थीं। पंचमलाल से सवाल किया-'देवरानी को साथ क्यों नहीं लाये?'

पंचमलाल अभी तो गाँव आये ही थे। बड़े भाई से ठीक से बात भी नहीं हुई, फिर अपने आने का मन्तव्य कैसे स्पष्ट करते। बोले-'कल ही वापस लौटना है। सोचा, कि उन्हें केबल एक दिन के लिए क्या ले चलूँ?... अब की आऊँगा तो साथ लाऊँगा।'

'लौटने की इतनी जल्दी क्या है?'

'एक दिन की ही छुट्टी मिली है?' पंचमलाल ने लक्ष्य को छुपाते हुए जवाब दिया।

'तब तो कोई बात नहीं, पर अगले बार आना तो अकेले मत आना' भाभी ने मीठी घुड़की भी दी, 'अकेले आओगे तो घर में घुसने नहीं दूँगी।'

खाना खाने के बाद दोनों भाई आराम करने चले गये। बड़े भाई हरिराम ने अपने बगल में ही एक चारपाई डलवा दी थी। थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। पंचमलाल सोच नहीं पा रहे थे कि अपनी बात को भइया के सामने कैसे रखे। वह इसी उधेड़-बुन में पड़े थे कि हरिराम पूछ पड़े-वहाँ सब ठीक तो है न...?

'हाँ', पंचमलाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया तो बड़े भाई ने सवाल किया-'फिर कैसे आना हुआ?'

बड़े भाई के प्रश्न को सुनते ही पंचमलाल कुछ क्षण के लिए असहज हो उठे थे। कुछ देर में सहज हुए तो उत्तर दिया-'आपके पास कुछ सहयोग के लिए आया हूँ।'

पल-भर के लिए हरिराम समझ नहीं पाये कि उसका छोटा भाई क्या कह रहा है, हर दृष्टि से सम्पन्न भाई को मैं क्या मदद करूँगा। पर पंचमलाल की समस्या को तो जानना ही था। कहा-'बोलो, क्या बात है।'

'भइया, मैं शहर में एक मकान लेने की सोच रहा हूँ।' हिचकते हुए पंचमलाल ने कहा।

'अच्छा तो है, गाँव में बच्चों की पढ़ाई ठीक से हो नही पाती, वहाँ एक मकान हो जायेगा, तो हम सबके लिए भी ठिकाना हो जायेगा।' सीधे-सीधे हरिराम ने अपने भाई की बातों का रहस्य जाने बिना सलाह दे दी, तो पंचमलाल ने अवसर का उपयोग किया-'लेकिन उसके लिए पैसों की ज़रूरत है, मैं चाहता हूँ कि आप मेरी कुछ मदद कर दें।'

छोटे भाई की बात सुनकर हरिराम की आँखें खुल गयीं। उठकर बैठ गये। फिर बोले-'मेरे पास पैसे कहाँ से आयेंगे, जो तुम्हारी मदद करूँ... हाँ, दो-चार हजार से अगर तुम्हारा काम बनता हो तो कहो। किसी से कर्ज़ लेकर दूँ?' अपनी विवशता भी दर्शायी 'बाद में अनाज बेचकर धीरे-धीरे उसे चुकता कर दूँगा।'

पंचम लाल भी उठकर बैठ गया। मौके की नज़ाकत को परखते हुए बोला-'दो-चार हजार से क्या होगा, इससे अधिक तो भाग-दौड़ में ही खर्च हो जायेगा।'

'फिर मैं क्या कर सकता हूँ।' अपनी असमर्थता की पीड़ा को हरिराम ने प्रकट किया।

बड़े भाई की असमर्थता का लाभ उठाते हुए पंचमलाल ने अपने अन्दर का प्रस्ताव प्रकट करना शुरू किया-'आप नाराज न हो तो एक बात कहूँ।'

'ऐसी कौन-सी बात है, जिससे मैं तुमसे नाराज होऊँगा?' हरिराम की हैसियत कहाँ थी कि वह साधन-सम्पन्न अपने छोटे भाई से नाराज़ होता। फिर पंचमलाल इस तरह की बात क्यों कह रहा है। यही विचार कर हरिराम ने पूछा-'बोलो, क्या बात है कि मैं नाराज़ नहीं होऊँगा?'

पंचमलाल जिस उद्देश्य के साथ गाँव आया था उसे स्पष्ट करने का अवसर देख बोला 'अच्छा तो नहीं लग रहा है पर क्या करूँ -मजबूरी जो है।'

छोटे भाई द्वारा ढोंग करते देख, हरिराम को गुस्सा आ रहा था। गुस्से से बोले-'तुम्हारी क्या मजबूरी है, मजबूरी तो मेरी है कि बाप-दादा की दी कुछ बीघे ज़मीन के सहारे परिवार का पेट किसी तरह पाल रहा हूँ...। तुम्हारी तरह हर महीने तनख़्वाह तो नहीं पाता जिस पर बाढ़ या सूखे का कोई असर नहीं पड़ता।'

बड़े भाई की बातों में अभावों की पीड़ा का स्पष्ट आभास हो रहा था, पर पंचमलाल उनकी पीड़ा का अनुभव करे या अपनी समस्या का हल तलाशे। बड़े भाई के सामने सफ़ाई दी-तनख़्वाह तो अच्छी मिलती है, पर उसके साथ-साथ खर्चे भी तो जुड़े हैं....गाँव तो है नहीं जहाँ जिस तरह चाहो उठो-बैठो, वहाँ तो अपनी पोजिशन का भी तो ध्यान रखता पड़ता है।'

'हाँ, यह तो है, फिर समस्या क्या है?'

'बैंक से बात की थी, वह हाउसिंग लोन देने को तैयार है।'

पंचमलाल ने समस्या का हल भी ढूँढ़ रखा है-यह जानकर हरिराम खुश हुए उत्साहित होकर बोले-'बढ़िया तो है, उसी से ले लो। ब्याज भी कम देना पड़ेगा,... किसी और से लोगे तो तीन का तेरह लेगा।'

'लेकिन, उसके लिए मार्जिन मनी तो हमें ही देना होगा, पंचमलाल ने अंततः अपनी समस्या सामने रख दी।'

'कितना देना होगा?'

'चार लाख।'

छोटे भाई द्वारा बताई गई राशि को सुनते ही हरिराम की आँखें फैल गई। इतनी बड़ी रकम को तो उन्होंने कभी एक साथ देखा भी न था, फिर छूने की बात कहाँ से होती। सहम कर पूछा-'इतना पैसा कहाँ से लाओगे?'

बड़े भाई की मन:स्थिति का लाभ उठाते हुए पंचमलाल ने अपने मन की बात प्रकट की–'आप अपनी स्वीकृति दे दें तो वह भी व्यवस्था हो जायेगी।'

'मैं क्यों नहीं चाहूँगा कि शहर में तुम्हारा अपना मकान हो?' शंकित मन से हरिराम ने अपनी बात कह दी तो पंचमलाल ने अपने लक्ष्य से आवरण हटाया-'मंगल सिंह से बात की है.... वह तैयार है ?'

'किस बात के लिए?' अज्ञात भय की आशंका से हरिराम ने पूछा।

'बापू के नाम से गाँव में जो ज़मीन है, उसमें मेरा भी तो हिस्सा होगा।... उसी को मैं बेचना चाहता हूँ।' पंचमलाल ने रिश्तों पर से केंचुल उतारते हुए अपनी बात बेझिझक ठोंक दी।

पंचमलाल की बात सुनते ही हरिराम के हृदय पर आघात हुआ। पीड़ा से मन कराह उठा। उसकी निर्लज्जता और ओछी सोच का क्या उत्तर दे निर्णय नहीं कर पा रहा था। हताश भी नहीं हुआ। मन में विचार किया–'वह छोटा है इसलिए अच्छे-बुरे का फैसला नहीं कर पा रहा है; इसलिए मेरा फर्ज़ बनता है कि उसे सही राह दिखाऊँ। बोले–'तो क्या अब तुम गाँव की ज़मीन बेचकर शहर में बसना चाहते हो?'

'शहर में मकान हो जायेगा तो फिर यहाँ क्या करने के लिए आऊँगा।' पंचमलाल ने और भी स्पष्ट किया, 'अपने हिस्से की ज़मीन बेचने के बाद फिर मेरा गाँव में रह ही क्या जायेगा?'

पंचमलाल की बातों को सुनकर हरिराम कुछ देर सोचते रहे, पर हिम्मत नहीं हारे। पुन: छोटे भाई को अपने निर्णय पर विचार करने के लिए प्रेरित करने हेतु कहा–'गाँव की ज़मीन बेचोगे तो, बाप-दादा के नाम का क्या होगा...? कल से ही लोग कहना शुरू कर देंगे दोनों भाइयों में लड़ाई हो गई है इसीलिए पंचमलाल गाँव छोड़कर जा रहा है।'

'भइया, आप भी पता नहीं कहाँ की बात लेकर बैठ गये...? आज लोग तो जीते जी बाप-दादा को भूले जा रहे हैं और आप हैं कि उनके मरने के बाद भी उनके नामों की चिन्ता कर रहे हैं।' पंचमलाल ने अपने मन की भड़ास निकाली।

'हाँ, पंचमलाल यही तो फर्क है, गाँव और शहर की सोच में। गाँव में आज भी लोग अपनी धरती को बेचना अच्छा नहीं मानते, इसीलिए इसे बाप-दादा की प्रतिष्ठा से जोड़कर देखते हैं।' हरिराम ने दु:खी मन से अपनी बात कही।

पंचमलाल को अपने स्वार्थ के आगे बड़े भाई के सारे तर्क बेकार लग रहे थे। इसीलिए कहा–मैं ऐसी दकियानूसी बातों को नहीं मानता... पूर्वजों के नाम पर अपनी व्यक्तिगत खुशियों को न्यौछावर कर दिया जाये। यह कहाँ की बात?'

लाख समझाने के बाद भी पंचमलाल के विचारों में वह परिवर्तन नहीं ला पायेंगे। वह अब किस अधिकार से अपने छोटे भाई को गाँव की ज़मीन बेचने से रोकें? एक खून के रिश्ते की ही डोर बची थी जो उसे रोक सकती थी लेकिन उसका अपना सगा भाई पंचमलाल स्वयं ही तोड़कर गाँव और परिवार के सभी रिश्तों से मुक्त होना चाहता है। ऐसे में वह या

कोई भी कैसे रोक पायेगा ऐसा होना? यही सोचकर हरिराम ने हताश मन से अपने छोटे भाई से कहा–'पंचमलाल, जब तुमने गाँव की ज़मीन बेचकर हम सबसे सारे रिश्ते समाप्त करने का मन बना ही लिया है, तो फिर मैं क्यों बाधक बनूँ?, डबडबाई आँखों से रूंधी आवाज़ में सलाह भी दी–'तुम जाकर, मंगल सिंह से मिलकर बात पक्की कर लो, कल रजिस्ट्री आफिस चलकर मैं भी हस्ताक्षर कर दूँगा।'

इसी के साथ दोनों भाई अपनी-अपनी चारपाई से उठकर विपरीत दिशाओं में चल दिये। एक मन-ही-मन कराह रहा था लेकिन दूसरा अपने मंतव्य को फलीभूत होते देखकर परम प्रसन्न!

ooo

शहर

❑ अरुणा शर्मा

यह शहर है अकेला
और उदास
जलता सा कोई साया

शाम डूब गई कितनी चुपचाप
रात फैल रही है आतंक का ओढ़े लिहाफ
छुपाती उसका विस्तार...

चाहा था कि ध्वस्त हो दीवारें
तोड़ अपना आकार
धकेल काल का प्रश्न
फाँदें अपनी चारदीवारी
ईंट दर ईंट

पूरा ब्रह्माण्ड साँझा घर
सारी सृष्टि का एक ही छत
मैं तोड़ूँ मुझे घेरते
सारे काँच पारदर्शी
मिला दूँ बंटे आंगन
सुर में सुर मिले जिस तरह

ooo

रुचि

❑ डॉ० ज़ाहिदा जबीन*

उस छोटे से कमरे के बीच उसकी किताबें बिखरी पड़ीं थीं, लगता था जैसे कई दिनों से कमरा साफ़ नहीं हुआ है। गर्मी इतनी थी कि मच्छर भी नहीं रहे थे। किंतु रुचि को गर्मी की या पंखा चलाने की सुध ही कहां थी। वह तो खिड़की पर खड़ी अंधेरे को निहार रही थी। अंधेरे में कुछ न होते हुए भी मानो कुछ ढूँढ़ रही हो। बाहर तो बिल्कुल अंधेरा था, न चाँद था न तारे।

"रुचि, तुम चाय ले रही हो ना?" माँ ने आवाज़ दी।

कॉलेज की केन्टीन के बाहर लड़कियों का झुण्ड बैठा था। "रुचि, तुम चाय ले रही हो न।" सहेलियों ने पूछा। रुचि ने आँखें ऊँची करते हुए कहा, "क्यों नहीं भई, हम तो लेंगे। चाहे कोई ले या न ले।"

"और समोसे?"

"पूछ क्यों रही है, दे ज़रा प्लेट, मैं तो तीन समोसे खाऊंगी, वह भी चटनी के साथ, मुझे लगता है खाली ही पटाना चाहती है।"

सहेलियों का हंसी-मज़ाक, एक-दूसरे को छोटी-छोटी बातों को लेकर चिढ़ाना, तंग करना, कितना मज़ा देता था, उस हंसी-मजाक में रुचि मानो खुद को भूल ही जाती थी।

"क्यों रुचि, बताती क्यों नहीं। चाय ले रही है ना। सुबह से कुछ भी नहीं खाया है तुमने।"

किन्तु वह हंसी-मज़ाक, वह चाय, वह सहेलियां कहां? उसे तो मां चाय के लिए बुला रही थी।

"नहीं माँ, भूख नहीं है।" रुचि ने बड़ी सुस्ती से उत्तर दिया।

रुचि को भला भूख-प्यास कैसे लगती। वह तो अमावस्या की अंधेरी रात में ऐसे डूबी थी जैसे अंधकार में किसी के चूल्हे से निकलता काला धुँआ अंधेरे में ही गुम हो जाता है।

उसे तो यह छोटी-सी बात समझ नहीं आ रही थी कि कैसी है यह दुनिया। पराए तो पराए, अपने भी उसे समझ नहीं पाए। अपने अठारह वर्ष के जीवन में कितनों से सम्पर्क रहा,

---

* *प्रवक्ता हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर*

कितनों से उसका परिचय और कितने संबंधी। किन्तु, कितने हैं, जो उसे समझ पाए हैं उसके मन की छोटी-बड़ी बात। ऐसा कोई मानव उसे दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहा था।

भाभी हवा के तेज़ झोंके की तरह आई और कुछ हैरान-सी बोली-"अरे, इतनी देर तक अन्दर क्या कर रही थी? मैं तो समझ रही थी कि कपड़े बदल रही होगी। पर यहां दरवाज़ा भी खुला और खिड़की भी। कमरे में अंधेरा। बत्ती तो जगाती।"

रुचि ने अपने बिखरे बालों को समेटते हुए बिजली का बटन दबाया। किन्तु बिजली न थी।

भाभी बड़े ही अंदाज़ से बोली, "अरे! ये बिजली तो अपनी मर्जी की मालिक है। जब चाहे जाती है, जब चाहे आती है।"

"भाभी। ज़रा मोमबत्ती लाना।"

शायद वह अपने कमरे से बाहर नहीं आना चाहती थी।

"अरे, मोमबत्ती की बच्ची। मोमबत्ती क्या लाऊं। मैं तो तुझे लेने आई थी। पिता जी, तेरे भैया तुझे बुला रहे हैं। वह बात जो करनी है ...." भाभी कुछ मज़ाक करते हुए बोली।

"नहीं भाभी मुझे पढ़ना है।"

"अरे, बड़ी आई पढ़ने वाली। छोड़ यह सब। अपने कल का सोच।"

"नहीं छोड़ो भी भाभी।" रुचि के नहीं-नहीं करने पर भी भाभी उसे पकड़ कर ले गई।

बाहर पिता जी, माँ, भैया सब बैठे थे। पिता जी और भैया दोनों चारपायी पर बैठे थे। माँ फर्श पर लकड़ी की छोटी चौकी पर बैठी थी। भाभी ने भी चौकी उठा कर डाली और बैठ गई। रुचि भी भाभी के पीछे अपना सारा भार भाभी के बायें कंधे पर डालते हुए बैठ गई। फर्श पर सामने मोमबत्ती स्टेंड लगा था। जिस पर दो मोमबत्तियां जल रही थीं, जिन्हें देखते ही पता चलता था कि न जाने कब से जल रही हैं। कमरे में बैठे लोगों में से किसी का भी चेहरा साफ़ नज़र नहीं आ रहा था। जिस प्रकार एक हल्का-सा हवा का झोंका चेहरों पर लगी धूल हटाने के लिए काफी नहीं होता, उसी प्रकार दो मोमबत्तियां भी कमरे में फैले अंधकार को हटाने में असमर्थ थीं।

उस कमरे का वातावरण शायद सही था। कम-से-कम रुचि के मन में जो हलचल थी उसके लिए तो अनुकूल ही था, वातावरण। रुचि के जीवन के बाहर-भीतर अंधेरा-ही-अंधेरा था, जिसमें उसका उजला, भोला चेहरा तो किसी को नज़र ही नहीं आ रहा था, तो भला उसके कोमल मन पर कैसे किसी की नज़र पड़ती? उसके रेशमी बालों की चोंटी इतनी लम्बी थी कि बैठते समय उसकी चोटी भी फर्श पर मानो बैठ-सी जाती। पर वह चोटी रुचि के मन-मस्तिष्क पर पड़ी ज़जीरों से कहीं छोटी थी।

रुचि सामने लगी मोमबत्ती को ऐसे ताक रही थी मानो उसके आंख झपकाने से मोमबत्ती बुझ जाएगी। रुचि सोच रही थी कि इस मोमबत्ती का भला क्या अस्तित्व है। कठपुतली की तरह अपनी गरदन को तब तक हिलाती रहेगी, जब तक पूरी-की-पूरी समाप्त न हो जाए। मोमबत्ती भला क्या चीज़ है, यहां तो लड़की भी कठपुतली है वह वही करती है जो उससे कहा जाता है। कौन कहता है कि भाग्य भगवान बनाता है। लड़की का भाग्य तो इस संसार के लोगों के हाथों में है, वे जैसा चाहें उसे बना सकते हैं।

रुचि जैसे नींद से जागी जब मां ने कहा, ''रुचि, बता भी ठीक है ना?''

रुचि तो खामोश ही रही। भाभी ने डाँटते हुए कहा-''अरे, बोलती क्यों नहीं, आखिर तेरी जिन्दगी का सवाल है।''

रुचि के तो जैसे गले में कुछ अटक गया था। वह चीख-चीख कर कहना चाहती थी, ''नहीं, नहीं मैं कुछ नहीं चाहती, अकेला छोड़ दो आप सब मुझे।''

पिता जी ने गला साफ़ करते हुए कहा, ''देख बेटी, तुझे तो पता है, मुश्किल से पेन्शन मिल जाती है। तेरे भैया की भी तो कमाई कुछ खास नहीं और फिर उसकी अपनी जरूरतें। जैसे-तैसे तेरी दीदी की शादी की। अभी शादी को केवल चार साल हुए थे। बच्चे की उम्मीद से अस्पताल क्या गई, बच्चा तो बच्चा, खुद भी हमें छोड़ कर चली गई और ....'' आगे उनसे कुछ कहा न गया। माँ भी सिसकियां लेते हुए साड़ी के पलू से आंसू पोंछ रही थी। आखिर कौन मां अपनी बेटी की मृत्यु पर नहीं रोती। भाभी उन्हें चुप कराने में व्यस्त हो गई। रुचि के भाई ने बिना किसी बात की ओर ध्यान देते हुए बात आगे बढ़ाई-''सवाल तो अब माधुरी के छोटे-छोटे बच्चों का है। उन्हें कौन सम्भालेगा? सुरेन्द्र को तो दूसरी शादी के लिए मना ही लिया उन लोगों ने। वह लोग क्या जाने कि सौतेली मां उन मासूम बच्चों को खाक सम्भालेगी?''

रुचि को दीदी की प्यार भरी आंखें याद आईं। वह दिन कितने सुन्दर थे, जब वह गर्मी की छुट्टियां दीदी के ससुराल में बिताने गई थी। माधुरी को रुचि को चिड़ाना कितना अच्छा लगता था। रुचि ज़रा खामोश क्या हुई कि माधुरी चिड़ाने लगी-''क्यों रानी किस को याद कर रही है?''

''दीदी क्या कह रही हो?''

''नहीं, रुचि, मैं तो जरूर आऊंगी तेरे ससुराल।''

''क्या कह रही हैं आप? जीजा जी सुनेंगे तो क्या कहेंगे, मैं तो यूँ ही।''

''हां, मैं जानती हूँ यूं ही कुछ नहीं, मेरा ससुराल देख कर अपने भावी ससुराल के बारे में सोच रही है।''

सुरेन्द्र दूसरे कमरे में बैठा था। दोनों बहनों की खिटपिट सुन वह भी भाग लेने आ गया।

"हां भई, अपनी ऐसी किस्मत कहां कि मेरा छोटा भाई होता तो उसकी शादी अपनी साली से कराता।"

रुचि ने रूठने का स्वांग भरते हुए कहा, "जीजा जी, कम-से-कम आप तो तंग न करें।"

"नहीं जी, मैं तो चाहता हूँ कि तुम इसी घर में रहो। चहल-पहल रहती है तुमसे इस घर में और तुम्हारी दीदी भी खिली-खिली रहती है।" सुरेन्द्र ने माधुरी की ओर मुँह करते हुए कहा, "मैं तो माधुरी, तेरी छोटी-मोटी, भोली बहना के लिए जान-पहचान का घर ढूँढूँगा, जहां हम बे झिझक आया-जाया करेंगे। इसकी शादी में तो हम धूम मचाएंगे। इकलौती साली है हमारी।" सबने ठहाके लगाए रुचि ने वहां से उठना ही ठीक समझा वरना यह सिलसिला पहले की तरह न जाने कब तक चलता।

रुचि को ध्यान आया कि वह तो उसी दो मोमबत्ती वाले अंधेरे कमरे में भाभी की पीठ से चिपकी हुई बैठी है और उसने सुना कि पिता जी कह रहे थे, "देखो बेटी, तू तो जानती है, बड़ी मुश्किल से हम गुज़ारा करते हैं। माधुरी की शादी पर जो कर्जा लिया था उसमें से अभी भी कुछ बाकी है।" भाई प्रवीण ने बिना समय गवाए बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–"इस मुश्किल में लड़की की शादी का खर्चा उठाना तो पर्वत उखाड़ने के समान है, जो मुझ से नहीं होगा। यह शादी हो जाए तो एक मुश्किल हल हो जाएगी और बच्चे भी सम्भल जाएंगे।"

मां रुचि से कुछ कहने के लिए आगे बढ़ी कि रुचि उठ कर बाहर बरामदे में खड़ी हो गई। मां और भाभी शायद उसे इस बात के लिए मनाने के लिए उसके पीछे आए। रुचि यह समझ नहीं पा रही थी कि वह दीदी की मृत्यु का शोक मनाए या अपनी बरबादी का। उसके मन का तूफान शान्त होने का नाम ही नहीं ले रहा था कि भाभी ने कंधे पर हाथ रखा और मां सामने से आकर कहने लगी, "देख बेटी, मान जा, तेरी दीदी की आत्मा को शान्ति मिलेगी जब उसके बच्चे ठीक से रहेंगे।"

रुचि को कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। बड़े ही प्रयत्न के बाद उसने कहा, "मां, दीदी तो इस संसार से चली गई। तुम अब समस्या सुलझाने की बजाय बिगाड़ क्यों रही हो। मैं नौकरी करूँगी। और दीदी के बच्चों को भी पालूँगी।"

माँ ने जैसे कुछ तंग आकर और बात को काटते हुए कहा–

"लेकिन वह भला अपने बच्चों को क्यों छोड़ने लगा। वह तो बच्चे अपने पास रखेगा और दूसरी शादी भी करेगा।"

"मां, मैं वहीं ज़ाकर उन बच्चों को पालूँगी। उस घर में दुल्हन बनकर नहीं, उन बच्चों की सौतेली मां बनकर नहीं। उन बच्चों की आया बन कर रहूँगी। लेकिन मां, जीजा जी से शादी ....।"